परमसंत पं. फकीर चन्द जी महाराज के सूत्र

1. इन्सान बनो। अपनी नीयत साफ रखो।
2. हमेशा आशावादी रहो।
3. सुमिरन मन को शांत करता है।
4. मन, वचन और कर्म से शुद्ध रहो।
5. अपने निजी स्वार्थ के लिए औरों को धोखा मत दो।
6. तुम्हारा शरीर हरिमन्दिर है, प्रभु स्वयं इसमें रह रहे हैं। उसको खोजो, वह अवश्य मिलेगा।
7. आत्मा और परमात्मा के मिलाप में मन ही रुकावट है।
8. मन को वश में कर लो, आत्मा स्वयं परमात्मा की ओर खिंची चली जाएगी।
9. सादा ज़िन्दगी और ऊँचे ख्याल रखो।
10. नफ़रत से नफ़रत को नहीं काटा जा सकता।
11. जो वायदा आपने किया है, उसे पूरा करो, यही मानवता है।
12. कर्म के कानून से कोई नहीं बच सकता।
13. जो सलूक आप अपने से नहीं चाहते, वह दूसरों से हरगिज मत करो।
14. अपना बोझ दूसरों पर डालने की कोशिश न करो।

फकीर लाइब्रेरी चैरिटेबल ट्रस्ट
मानवता-मन्दिर, होशियारपुर।

आवागवन

उर्फ जीवन रहस्य

परम दयाल
परमसन्त पं. फकीरचन्द जी महाराज

आवागवन

उर्फ

जीवन रहस्य

प्रकाशक :

फकीर लाइब्रेरी चैरिटेबल ट्रस्ट

होशियारपुर।

पुनर्मुद्रित

दूसरा संस्करण : 2015

परम संत दयाल फ़कीरचन्द जी महाराज

18, रेलवे मंडी, होशियारपुर।

विषय-सूची

भूमिका

लेखक द्वारा

पढ़ो पढ़ो पढ़ो गुनो क्या लिखा है फकीर ने।
तलाश में खोई जिन्दगी अपनी इस फकीर ने॥

सत मेरा रूप है, वाणी है सत की मेरी।
सत का चोला लिया है, इस तुम्हारे फकीर ने॥

सतगुरु ने की दया, सच्चा फकीर बना दिया।
जो समझा भाई लिख दिया, है इस फकीर ने॥

आलिम नहीं हूँ आमिल हूँ मैं, अलफ़ाज पर न जाना।
नकल तकलीद सीखी नहीं है तेरे फ़कीर ने॥

जो समझा- अपना लिखा, जाती अनुभव भगवानसिंह।
है यकीं टूटेंगे भरम, इस मेरी तहरीर से॥

तेरा अंजाम वह होगा, आवागवन में तू न आयेगा।
यह लिखा है भगवानसिंह तेरी तकदीर में॥

आवागवन का विषय एक ऐसा विषय है जिसने अंसख्य लोगों को भटका रखा है। विशेष रूप से हिन्दुओं में जितने धर्म अथवा तर्क शास्त्र की शाखायें कायम हुई; उसका एक कारण यह भी है कि प्रत्येक आचार्य या धर्म संस्थापक ने अपने-अपने विचारानुसार आवागवन की व्याख्या की और उससे बचने के उपाय और राय भिन्न-भिन्न रूपों में लोगों के सामने रखे और जन साधारण उनकी रोचकता और वर्णन शैली के प्रभाव से उनको स्वीकार करते रहे। मैं स्वयं एक मुद्दत तक इसी उलझन में फँसा रहा।

एक साल हुआ मेरे एक प्रेमी श्री भगवानसिंह ने आवागवन के विषय में मुझ से अपने विचार और अनुभव को प्रगट करने के लिये कहा। मैंने उस समय अपने विचारों को टूटे - फूटे शब्दों में प्रगट किया। अब उनका पत्र आया है कि इन लेखों को पुस्तक रूप में प्रकाशित कराने के लिये भूमिका लिख दीजिये। अतः ये थोड़े से शब्द लिख रहा हूँ।

वास्तव में आवागवन है भी या नहीं अथवा उससे बचाव की कोई सूरत हो भी सकती है या नहीं, एक लम्बा चौड़ा विषय है तथादि यह छोटी पुस्तक इस पर भली भाँति प्रकाश डालती है। मैं पाठकों का ध्यान गुरु नानक के एक शब्द की ओर दिलाना चाहता हूँ-

पूरा सत गुरु बैठिये, पूरी होय जुगत।
(हिनन्दयां, खेलन्दयां, पहनन्दयाँ बिच होवे मुक्त॥)

हिन्दुओं के धर्मशास्त्र में भी लिखा है:-

ध्यान मूलम् गुरुमूर्त्ति, पूजा मूलम् गुरु पदम।
मंत्र मूलम् गुरुर्वाक्यम्, मोक्ष मूलम् गुरु कृपा॥

सच बात यह है कि वेद, कुरान, अंजील, धर्म, कर्म, योग, जप, तप, व्रत और नियमादि में से कोई भी वस्तु मनुष्य को आवागवन से नहीं बचा सकती। बल्कि जोरदार शब्दों में कहूँगा कि कदापि नहीं बचा सकती। मेरा अभिप्राय किसी धर्म, पंथ अथवा सोसाइटी के विरूद्ध कुछ कहने का कदापि नहीं है बल्कि अपने निज अनुभव के आधार पर सच्चाई को प्रगट करने के लिये ऐसा कहने का साहस कर रहा हूँ। शास्त्रों के मंत्र अथवा गुरु नानक की वाणी का हवाला भी आपके विचार से दिया गया है।

इस सच्चाई को केवल वह पुरुष समझ सकता है जिसने अपने तन, मन और चित्त को स्थिर कर लिया है। शेष लोग इस सत्यता को ज्यों का त्यों नहीं समझ सकते। अत: ऋषिओं, महात्माओं और संतों ने समयानुसार और मनुष्य की प्रकृति और समझ-बूझ का ध्यान करते हुये अपने अनुभव या विचारों को रोचक ढंग से प्रस्तुत करने में श्रेष्ठता समझी है और भिन्न-भिन्न ढंग और साधन जारी करके मनुष्य में वह निपुणता उत्पन्न करने का यत्न किया है जिससे वह सार वस्तु को ग्रहण करने के योग्य हो सके। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और पंथों के धर्म, कर्म और उपासना के ढंग इनके विभिन्न रूप हैं।

अब मैं अपने उस निज अनुभव के आधार पर, जिससे मुझको यह विश्वास हो गया है कि अब मेरा आवागवन न होगा अथवा मुझे आवागवन के भ्रम से छुटकारा मिल गया है कि आवागवन कोई वस्तु है भी या नहीं, यह कहने का साहस करता हूँ कि सिवाय सतगुरु के कोई भी मनुष्य को आवागवन से नहीं बचा सकता। भले ही मेरे विरुद्ध कोई यह निर्णय करे कि मैं मानव-पूजा का अनुयायी हूँ, मगर यह बात नहीं है। ऐसा जो समझेगा वह गलती खायेगा। सतगुरु नाम है पूर्ण विवेक का व (Perfect knowledge of self) निज स्वरूप के पूर्ण ज्ञान का और यह हमेशा मनुष्य के अन्दर प्रगट होता है। यह सच्चाई है, लेकिन संसारी लोग नहीं समझते हैं। जितने विचारभाव, शक्ल सूरत, अथवा अनुभव मनुष्य के अन्दर पैदा होते हैं, वह सबके सब बाह्य प्रभावों के परिणाम होते हैं। अत: जब तक बाहरी ढंग से बन्धन-मुक्तता, स्वाधीनता अथवा मुक्ति आदि के प्रभाव मनुष्य को न मिलेंगे, तब तक वह उसके अन्तर में किस प्रकार उत्पन्न होंगे? निर्बन्धता, मुक्ति और

सच्चाई के बाह्य प्रभाव मनुष्य के अन्दर बढ़कर उसको हक्कुल यकीन (पूर्ण विश्वास) का दर्जा प्रदान करते हैं। अत: बाहरी पूर्ण मुक्त पुरुष की सेवा अनिवार्य है। यहाँ सेवा से अभिप्राय उसके पाँव धोना, पूजा करना, उपास्य देव बनाने से नहीं है बल्कि उसकी वाणी को ध्यान पूर्वक सुनना, सुनकर गुनना और गुनकर अनुभव करने से है। यही असली और सच्ची गुरु सेवा है। यह एक ऐसा भेद है जिसे यह आज़ाद फ़कीर पहिली बार खुले शब्दों में बिना स्वार्थ के निर्भयता से अपने जैसे दीवानों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा है।

आजकल वीर्य की कमी और मानसिक ब्रह्मचर्य के गिर जाने से लोगों का ध्यान वासनाओं के चक्कर में फँसा रहता है और चित्त की वृत्तियों में थिरता नहीं आती। इसलिये साधारण अवस्था में बाह्य पूर्ण पुरुष के मिल जाने पर भी शीघ्र पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं होता, क्योंकि मनुष्य उसके वचन, संकेत और Touch (स्पर्श) को मन की चंचलता के कारण ग्रहण नहीं कर सकता। यही कारण है कि आवागवन से मुक्ति के अभिलाषियों को प्रारम्भ में चित्त को एकाग्र करने का साधन सिखलाया जाता है जिसका सहज तरीका अजपा जाप और फिर सुरत शब्द योग है। थिरता प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य को बाहरी सतपुरुष के वचन से सच्चे सतगुरु या पूर्ण विवेक या ज्ञान जो मनुष्य के अंदर - बाह्य नि:स्वार्थ और मुक्त पुरुष के बाह्य प्रभाव और वचनों से प्रगट हुआ है, मनुष्य को आवागवन के चक्र से छुटकारा दिला देता है। मनुष्य को स्वयं इसी जीवन में ज्ञात होने लगता है कि वह आवागवन से बच गया और आवागवन का संशय भ्रम भी उसके अन्दर से जाता रहता है।

इस ज्ञान, अनुभव या पूर्ण विवेक के प्राप्त हो जाने पर आवागवन का नाश हो जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि फिर मनुष्य अपने को ब्रह्म समझने लगता है अथवा वह अनलहक और अहम् ब्रह्मास्मि को कहता फिरता है बल्कि ज्ञान या अनुभव नाम है उस सार समझ का जिसके द्वारा उसको भान होता है कि वह क्या है, कौन है और यह प्रपंच या रचना क्या है आदि-आदि पाठक यह प्रश्न कर सकते हैं कि फिर वह क्या हो जाता है? मैं क्या उत्तर दूँ। अफसोस है कि इस अवस्था के प्रगट करने के लिये न शब्द मिलते हैं न वाणी काम देती है। संकेत मात्र किये देता हूँ.

जब ज्ञान मिला तब मैं न रही, अरु मैं के संग में तू भी गया।
जब ऐसा हालत प्राप्त हुई, फिर आवागवन है किस को रहा॥

तुम प्रश्न करोगे कि क्या वह मर जाता है। कदापि नहीं। शरीर,मन और रूह (आत्मा) विद्यमान हैं। उसकी समझ में परिवर्तन हो जाता है। एक मुक्त पुरुष की वाणी सुन लो। मुमकिन है कुछ समझ जाओ।

गुरु ने दीना अब भेद अगम का।
सुरत चली तज देश भरम का॥
बल पाया अब विरह मरम का।
भटकन छूटा और दैरो हरम का॥
वर्षन लागा मेघ करम का।
संशय भागा जनम मरण का॥
तोड़ दिया अब जाल निगम का।
सुख पाया अब हम दम-दम का॥

फल पाया आज हम सम दम का।
भँवर हुआ मन सेत पदम का॥
फूँक दिया घर लाज शरम का।
काटा फंदा नियम धर्म का॥
ज्ञान ध्यान वाचक हम छोड़ा।
भक्ति भाव का पहिना जोड़ा॥
भक्ति भाव की महिमा भारी।
जानेंगे कोई संत पुजारी॥
सत नाम सत पुरुष अपारा।
चौथे मांहिं करें दरबारा॥
सुरत शब्द मारग कोई पावे।
सो हंसा चढ़ लोक सिधावे॥
सो मारग अब राधास्वामी गाई।
कोई-कोई प्रेम भक्ति से पाई॥

प्रश्न किया जा सकता है कि जो मनुष्य आवागवन के भ्रम में नहीं आया अथवा जिसको आवागवन का महत्व ज्ञात नहीं हो रहा है, उसके लिये आवागवन या जन्म मरण है या नहीं। इसके विषय में मेरा उत्तर कानून कुदरत के सिद्धान्त के अनुसार है जिसको मैंने वर्तमान समय की साईंस के ढंग पर समझा है। वह यह है कि यद्यपि ऐसा व्यक्ति अभी तक आवागवन के संशय भ्रम में नहीं आया लेकिन केवल इस अज्ञानता के कारण वह आवागवन से बच नहीं सकता, क्योंकि इसके ध्यान में या तवज्जह में किसी न किसी प्रकार का अहंकार मौजूद है। यह अनुभव में

आई हुई अथवा सिद्धान्त की बात है कि जब तक किसी मनुष्य के अन्दर किसी न किसी प्रकार का अहंकार है, वह आवागवन में है। प्रगट रूप से कहा जायेगा कि जब तक मनुष्य के अन्दर उसकी बुद्धि किसी बात का विश्वास या निश्चय रखती है और उस विश्वास का अहंकार रखती है, वह आने-जाने के चक्र से अलग नहीं रह सकता। चूंकि पूर्ण ज्ञान होने पर मनुष्य के समस्त विश्वास, ईमान और धर्म समाप्त हो जाते हैं और मनुष्य अपने व्यक्तित्व अथवा गुरु नानक के कथनानुसार अपने है पने (अहंभाव) को खो देता है अत: आवागवन का कोई सवाल ही बाकी नहीं रह जाता?

सुनो! यह फ़कीर निर्बन्ध होता हुई बन्धन की दुनिया में आकर 'मैं' 'तू' के शब्द प्रयोग करने के लिये विवश होकर अपना अनुभव सुना रहा है।

जब तक कोई मनुष्य प्रत्यक्ष में ईश्वर पूजक या किसी अन्य का उपासक है या किसी प्रतीक या ग्रंथ जैसे वेद, शास्त्र या पुराण का अहंकारी है अथवा अपने -आपको हिन्दू, मुसलमान, पंथाई या संतपने के विचार से बँधे हुये हैं उसका पूर्ण रूपेण आवागवन से बचना असम्भव है। हाँ, जो बन्धन मुक्त है, स्वतंत्र है, किसी के खंडन- मंडन से कोई वास्ता नहीं रखता, बल्कि अपनी स्थिति में चैतन्य रहता हुआ स्वाभाविक रूप से कर्म करता है केवल वही पुरुष आवागवन से रहित है। पाठक शायद यह प्रश्न करें कि ऐसे मुक्त पुरुष का जीवन किस प्रकार व्यतीत होता है। इसका उत्तर संकेत रूप से देता हूँ।

जान बूझ अनजान बन, रहता इस दुनिया में वह।
ताकतें सब मौजूद हैं, वे ताकती से रहता है वह॥

गरचये बेहोश है, मगर बेहोशी में है होशियार वह।
जिन्दा है मगर जिन्दगी की, खुमारी से पार है वह॥

यह नहीं कि वह कर्म नहीं करता बल्कि वह बहुत काम कर जाता है। इसके कार्य स्वार्थ रहित और निष्काम होते हैं। वह सच्चा मनुष्य होता है। न हिन्दू होता है न मुसलमान, न धर्मी न अधर्मी। फिर वह क्या होता है? अफसोस कि शब्द नहीं मिलते जो ऐसे पुरुष के गुण वर्णन कर सकूँ केवल संकेत कर दिया।

अत: आवागवन से बचने के लिये सतगुरु (पूर्ण विवेक) का आश्रय लेना आवश्यक है और पूर्ण विवेक की प्राप्ति के लिये, तन, मन, चित,बुद्धि और अहंकार को थिर करना अनिवार्य है। इस थिरताई के प्राप्त करने के लिये किसी मुक्त पुरुष के सत्संग की आवश्यकता है। वह भेद बता देगा। भेद के समझ लेने के बाद आवागवन समाप्त हो जायेगा। यह विचार जो इस पुस्तक में प्रगट किये गये हैं वह केवल एकाग्र चित्त वाले मनुष्य के लिये लाभदायक होंगे।

सतपुरुष पूर्ण विवेक घट-घट वासी दाता दयाल आशीर्वाद दें कि जो कोई श्रद्धा और प्रेम से इस पुस्तक को पढ़ें उनके अन्दर पूर्णविवेक उत्पन्न हो और उनके भ्रम निवारण होकर सच्चे जीवन के अधिकारी बनें।

मनुष्य की यह 'मैं' एक प्रकार की बोधशक्ति है जो तत्वों के योग से बनी है। जिस-जिस प्रकार की प्रकृति से मौज ने मनुष्य के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर को बनाया है वैसे-वैसे ही अस्तित्व का भाव प्रत्येक प्राणी से प्रगट हो रहा है और प्रत्येक प्राणी की गति का कारण

वही है। जब हिलोर के सिलसिले में शरीर टूटेंगे तो उस समय 'मैं' भी समाप्त हो जायेगी। शेष क्या रहेगा-

ज़ात, ज़ात ज़ात ज़ात है। यह है मित्रो सच्ची बात बात है॥

ज़ात में तमब्वुज है और बनते वजूद यहाँ।
वजूदों में बनती जिन्दगी जो है खेलती यहाँ॥

दर असल एक ही जौहर असली है यहाँ,
जिसका न कोई नाम, नहीं कोई ज़ात है। ज़ात-2

जैसी मौज कुदरत की खिला रही है यहाँ,
खेल में है खेल होता और है क्या यहाँ।

समझ करके भेद मिट गया उत्पाद है॥ ज़ात-2
यह है राज़ यह है ज्ञान,समझ में जब आगया।

फ़कीर ने फ़कीरी छोड़ी खामोशी में आगया॥
तजुरबा अपना यह आपको दिखात है॥ ज़ात-2

इसलिये ऐ दोस्तो!
जब तक मन और रूह का मेल है यह खेल है।

फिर क्या है-

ज़ात........ज़ात...........ज़ात.........ज़ात है।
और इसी का नाम आवागवन से निजात है॥

– दयाल (फ़कीर)
१८ रेलवे मंडी, होशियारपुर।

आवागवन

प्रथम प्रसंग

प्यारे भगवानसिंह! तुम बहुत समय से आग्रह कर रहे हो कि आवागवन के विषय में अपने विचार प्रगट करूँ। अच्छा सुनो! प्रथम तो यह बताओ कि तुमने यह कैसे विश्वास कर लिया कि आवागवन है। सम्भवतः तुम्हारा उत्तर यह होगा कि हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थ ऐसा कहते हैं कि चौरासी का चक्र है और मनुष्य अपने कर्मानुसार योनियों में आता जाता है। अच्छा ठीक है। मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आधुनिक संत, धर्माचार्य और अनुभवी पुरुष यह बतला सकते हैं कि वह पिछले जन्मों में क्या थे और भविष्य में क्या होंगे। अफ़सोस इस बात का है कि कोई पुरुष सच्चाई के साथ बात नहीं करता। सब टेकी बने हुये हैं और बाह्य संस्कारों और पुस्तकों के आधार पर ऐसा मानने के लिये विवश हैं। धीरे-2 जब विश्वास दृढ़ हो जाता है तो वह संस्कार या विचार इतना विकसित होता है कि उससे बाहर निकलना कठिन हो जाता है।

एक समय जब मैं बग़दाद में था तो मस्ती की दशा या विचार के घनेपने की दशा में अपने दस जन्मों का हाल लिख कर पिता जी के पास भेजा था। लेकिन बाद में सच्चाई के अनुभव ने साबित किया कि मनुष्य के अन्दर जो विचार उत्पन्न होते हैं अथवा वह जो कुछ सोचता और अनुभव करता है उसका असली कारण बाह्य प्रभाव होते हैं, अर्थात् जिस प्रकार के बाह्य प्रभाव मनुष्य पर बाहर से देख कर, सुन कर, पढ़ कर ,छू कर पड़ते हैं उसी प्रकार के विचार और भाव उसके अन्तर में

पैदा होते हैं और उसके वचनों और लेखों से प्रगट होते हैं। वह रेशम के कीड़े की भाँति अपने ही विचारों में ग़र्क होकर जिस प्रकार के भाव पैदा करता रहता है, उन्हीं का अनुभव भी करता रहता है। मेरा विचार है कि यदि आप इस बात पर ध्यानपूर्वक विचार करेंगे तो अवश्यमेव सहमत होंगे। अत: मैं सच्चाई पसन्द होने के नाते से यह कहने का दावा नहीं करता कि आवागवन होता है या नहीं। मगर यह उत्तर यथेष्ट नहीं होगा और न इससे आपको संतोष होगा। वास्तव में बात यह है कि जब तक मनुष्य स्वयं सच्चाई का रूप नहीं बनता, सार भेद का ज्ञाता भी नहीं हो सकता। कहा है–

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप॥ (कबीर)

यहाँ सच्चाई से अभिप्राय केवल सच बोलना ही नहीं है बल्कि मेरा अभिप्राय निज (रूप) अनुभव से है। अपने हृदय की आँख जिस बात को न माने उसका विश्वास करना या उससे विरुद्ध कहना नादानी है।

अब मैं आप से पूछता हूँ कि आवागवन के होने और उससे बचने का विचार क्यों उत्पन्न हुआ? क्या कोई प्रमाण आपके पास इसके होने न होने का है? विचार कर देखो। आप जो कुछ कहेंगे वह केवल सुना - सुनाई या पुस्तकों में पढ़ी हुई बातें होंगी और इस कोरे विश्वास के सहारे आप वार्तालाप कर सकेंगे। स्वामी जी महाराज व दाता दयाल का कथन है:–

जब तक देखो न अपने नैना। तब लग मानो न गुरु के बैना॥

जब तक अपने अन्तरीय अनुभव की दृष्टि से किसी बात की समझ न आवे उसको मुझे या किसी भी सच्चाई प्रिय मनुष्य को न मानना चाहिये। आप यह ख्याल करेंगे कि मैंने तो लुटिया ही डुबो दी कि न तो आवागवन का इक़रार है न इन्कार। ऐसा क्यों हुआ या मैंने ऐसा क्यों कहा इसके उत्तर में स्वामी जी महाराज की वाणी सुनो–

गुरु ने दीना अब भेद अगम का।
सुरति चली तजि देश भरम का॥

यह शब्द भूमिका में पूरा दिया जा चुका है। एक बार फिर ध्यान से पढ़ो। जब से सार भेद या राज़ मिला, आवागवन का वहम दिल से मिट गया। शब्द नहीं मिलते न वाणी साथ देती है, कि जो मैं अपने अनुभव को प्रगट कर सकूँ। मैं स्वयं अनेकानेक प्रकार के भ्रमों में फँसा हुआ था। अब दातादयाल की दया से बुद्धि निश्चयात्मक हो गई है। न कोई वहम सताता है न भ्रम दु:ख देता है। जीवन एक ख़ास शान के साथ० यतीतह ोताहै ।अ ौरह स्ती(अस्तित्व)अ पनीश ाानम ेंइ स संस्कार का खेल देख रही है। मैं चाहता हूँ कि आपको भी यह अवस्था प्राप्त हो।

अब मैं जो कुछ लिखता हूँ, इसे ध्यान से बराबर पढ़ो और सोचो। स्वयं किसी नतीजे पर पहुँचो। यदि दूसरों की राय या वाणी के आधीन रहोगे तो विद्वान और चतुर तो अवश्य बन जाओगे, मगर सार भेद के ज्ञाता न बनोगे। न भ्रमों से छुटकारा मिलेगा।

आप-आप को आप पहिचानो,
कहा और का नेक न मानो।

जब तक मनुष्य अपने आप को न पहिचाने तब तक आवागवन या दूसरे इसी प्रकार के भ्रम नहीं जाते। इसलिए आवश्यक है कि अपने आपको जानो और पहिचानो। यह जानना अनुभव से होगा कि हम कौन हैं, या मनुष्य क्या है?

हम कौन हैं या मनुष्य क्या है, इस बात को प्रगट करना अत्यन्त कठिन है। इसके प्रगट करने के लिये जो भी शब्द प्रयोग किये जायेंगे वह अपूर्ण व अपर्याप्त होंगे। सहस्त्रों पृष्ठ लिखने पर भी साफ-साफ वर्णन नहीं हो सकता। हम कौन हैं और क्या हैं, वह हमारे अस्तित्व से हर समय प्रगट होता रहता है। वह किस प्रकार? सुनो, हम में जो हमारा हैपना है वह हमारे अस्तित्व के खेल में हर समय खेलता रहता है। हममें और हमारे साथ हमारा हैपना मौजूद है। हमारा हैपना काल और हम दयाल हैं। हमारा हैपना गुण और हम शुद्ध स्वरूप हैं या यों समझो कि एक ही अस्तित्व ने दो रूप धारण कर रखे हैं।

हमारा अपने वास्तविक स्वरूप या दयाल या अकाल को भूल कर अपने गुणों या हैपने में महव होकर खेलना यद्यपि आनन्द देने वाला है तो भी आनन्द के साथ कष्ट, खुशी के साथ रंज, अचिन्तपने के साथ चिन्ता का दौर भी आते रहना अनिवार्य है क्योंकि गुणों में समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है। यह असम्भव है कि हमारा वास्तविक स्वरूप (ज़ात) अपने गुणों में महव होकर हमेशा आनन्द ही प्राप्त करता रहे। किसी एक भाव (या गुण) के अनुभव कर लेने के बाद यदि उसे छोड़ा न जायेगा तो आनन्द या सुख का स्थिर रहना असम्भव है। भावों (या गुणों) का यही खेल सच्चा आवागवन है। साथ ही इसके यह

कहना ज़रूरी है कि यह गुण भी अपना आकार रखते हैं। कोई गुण ऐसा नहीं जो आकार रहित हो। प्रत्येक विचार व भाव अपना रूप और रंग रखता हुआ स्थान घेरता है या मंडल बनाता है।

प्रत्येक गुण या भाव का एक खास भंडार होता है। वहाँ से हर समय शक्ति मिलती रहती है। जब किसी गुण का अपना अस्तित्व समाप्त हो जाता है तो वह अपने असल भंडार में मिल जाता है। सम्पूर्ण गुणों या भावों का भंडार चाहे वह स्थूल हो, चाहे सूक्ष्म या कारण हो, प्रकृति है। हस्ती (सत) में क्षोभ के सिलसिले में जिस प्रकार का देह बनता है उसी प्रकार के भाव पैदा हो -2 कर उस देह में खेल खेलते हैं या यों समझो कि ज़ात (शुद्ध स्वरूप) अपने ही भावों या गुणों में जो उससे निकलते हैं खेलती रहती है।

हम या हमारा निज स्वरूप (ज़ात) अपनी मौज या इच्छा से खेलने के विचार से क्षोभ में आया। खेला। स्वयं अपनी इच्छा से कैद व बन्द (बन्धन) का सिलसिला पैदा किया और स्वयं ही उस से घबरा कर उससे बचने की तदबीर सोचने के लिये मजबूर होता है। बन्धन भी एक खेल है और उससे बचने का उपाय करना भी एक खेल है। मानव शरीर ही एक पूर्ण कड़ी है जहाँ से (निज स्वरूप की ओर) वापिसी का ख्याल मिलता है, क्योंकि मानव शरीर के अन्दर सम्पूर्ण विभूतियाँ मौजूद हैं। उसमें पूर्णता है और हमारा शरीर सब प्रकार के भावों का तजूर्बा कर सकता है। इसी कारण से महापुरुषों ने कहा है-

मानुष तन सुर को भी दुर्लभ।

मौज के प्रभाव से भाव स्वयंमेव उत्पन्न होते रहते हैं और साथ ही नाश को प्राप्त होते रहते हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने भावों का तमाशा दिखाता रहता है।

चूँकि भाव व विचार उत्पन्न हो कर नाश को प्राप्त होते रहते हैं इसलिये यह असम्भव है कि हम अपने पिछले भावों की स्मृति (याद) रख सकें कि हम कौन थे, कहाँ थे और क्या-क्या कर्म किये थे। हाँ, पिछले भावों का बोध या अनुभव रहता है और इसी बोध या अनुभव के प्रभाव से मनुष्य एक खास तबीयत लेकर पैदा होता है और काम करने लग जाता है।

मैं मानता हूँ कि जन्म मरण है मगर वह क्या है, वह है एक व्यक्ति के भावों का खेल। जब किसी व्यक्ति के अन्दर भावों का अनुभव पूर्णता को पहुँच जाता है और वह खेल से उकता जाता है, (तब उसमें) बेआसपना, बेख्वाइशी या उदासीनता आ जाती है। असली निजात, मुक्ति मोक्ष या वापिसी केवल पूर्ण बेख्वाइशी (निष्कामता) में है।

जिस प्रकार बाह्य संस्कारों से मनुष्य के अन्दर इच्छायें उत्पन्न होतीह ैंइ सीप्रकारब ेख्वाइशी(निष्कामता)के ब ाह्यस ंस्कारोंस े निष्कामता भी आने लगती है। यद्यपि निष्कामता का भाव या विचार भी एक प्रकार का भाव या विचार ही है मगर यह सब वापिसी (मुक्ति) के भाव हैं। संतों का संस्कार उनकी संगत, शिक्षा और रहनुमाई (पथप्रदर्शन) वापिसी (मुक्ति) के लिये होती है। यह निवृति मार्ग है और वह भी केवल खास-खास आदमियों के लिये होता है सबके लिये नहीं।

एक दफा मनुष्य शरीर धारण कर लेने के पश्चात आत्मा मानव देह में ही आयेगी। यह नहीं हो सकता कि वह कुत्ता बिल्ली या किसी दूसरे शरीर को धारण करे क्योंकि जो संस्कार उसको प्राप्त होंगे वह मनुष्यता के होंगे और मनुष्य देह में ही उनका खेल पूर्ण हो सकेगा। हाँ, किसी ने संस्कार ही ऐसे लिये जिनका सम्बन्ध दूसरे शरीरों से है या दूसरे शरीर की इच्छा ही प्रबल हुई तो दूसरे शरीर में चले जाना भी सम्भव हो सकता है।

सम्भव है कोई पाठक यह सवाल करें कि ज़ात (निज स्वरूप) या हम या तुम क्यों इस कैद व बंद (बन्धन) में फँसे। आदि में तो फसाव की सूरत नहीं होगी। इसकी उत्तर केवल यह है कि हम में खेलने या प्राकट्य में आने की प्राकृतिक इच्छा पैदा हुई और हम आ गये। यह जगत, पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा लोकलोकान्तर आदि-आदि हमारी ज़ात (निज स्वरूप) ने खेलने के लिये बनाये और (हम) खेले। जब उकता गये, छोड़ दिया। न हम पैदा हुये, न हमको मौत है, न हमारी कोई मिसाल है। हम अद्वितीय हैं। यहाँ 'हम' शब्द से अभिप्राय ज़ात (निज स्वरूप) से है न कि भावों से। वर्णन शैली में मजबूरी है कि हम अपने निज स्वरूप को हम कहें या तू कहें। जब तक हम शरीर धारण कर रहे हैं अंश कहलाते हैं, अंश हैं। मगर जब भावों से मुक्त हो जाते हैं हम आप अद्वितीय सर्व-देशीय और अमर हो जाते हैं।

ज़ात (निज स्वरूप) का या उसके अंश का भाव व बोध में आना आ खेलना और अपने आपको भूल जाना ही आवागवन है। हम या हमारा निज स्वरूप या उसका अंश, मालूम नहीं कितने युगों से, अपने भावों में जो वास्तव में उसके अपने ही गुण हैं, फँसा हुआ है। जब तक

यह अपने भाव और विचार की ओर से लापरवाह या उदासीन नहीं होता, बाह्य प्रभावों से छुटकारा नहीं मिल सकता और विभिन्न योनियों या अवस्थाओं में इसे घूमना पड़ता है। उस दौर (क्रम) के चलते रहने से जब उदासीनता आने लगती है तब व्यक्ति अपने स्वरूप या अपने असल की ओर आकर्षित होता है कि उससे छुटकारा प्राप्त करे। ऐसे समय में मौज से किसी सच्चे संत का दर्शन प्राप्त कर लेता है तो वहाँ से निवृति मार्ग या वापिसी का संस्कार मिलता है और उस संस्कार के कारण मनुष्य में बेख्वाहशी आने लगती है। जैसे-जैसे मनुष्य वासना रहित या निष्काम होता जाता है बाह्य प्रभावों का असल भी उस पर कम होने लगता है और निवृति की सूरत निकल आती है।

तर्क दुनिया तर्क अकबा, तर्क मौला तर्क-तर्क।

चूंकिम ेरीअ ंतरीयेब ोधश ाक्ति स ूक्ष्मब नच ुकीह ैइ सलिये अनुभव के भावों को प्रगट करने के लिये बहुत सूक्ष्म विचार जुबान से निकलते हैं इसलिये साधारण दिमाग वाले लोग मेरे मन्तव्य को भली प्रकार नहीं समझ सकते। तब भी कोशिश करता हूँ कि बात समझ में आ जाये।

सम्भव है तुम्हारा प्रयोजन आवागवन से यह हो कि क्या हम सचमुच योनियाँ बदलते रहते हैं। इसका उत्तर केवल अनुभवी पुरुष ही दे सकता है और अनुभवी मनुष्य ही समझ सकता है। हमारा देह वीर्य से उत्पन्न होता है। वीर्य पिता के देह में भोजन से बनता है। भोजन में असली शक्ति सूर्य की गर्मी की होती है। इससे प्रगट हुआ कि हमारा (अस्तित्व) वास्तव में अग्नि रूप है जिसके ऊपर स्थूल भौतिक

गिलाफ चढ़े हैं। चूंकि साईंस ने साबित किया कि गर्मी स्वयं कोई शक्तिशाली वस्तु नहीं बल्कि बिजली की भाँति वस्तुओं की रगड़ से उत्पन्न होती है इससे प्रगट होता है कि सूर्य से भी ऊपर अथवा कोई ऐसी सूक्ष्म वस्तु है जिससे यह सूर्य उत्पन्न होता है। वह क्या है? यदि मैं उस आकाश तत्व कहूँ तो वेजा न होगा। हम या हमारा चैतन्यपना या हैपना वास्तव में इस प्रकृति, आकाश, अग्नि, वायु और जल आदि के संयोग का परिणाम है। जिस वस्तु से यह प्रकृति उत्पन्न हो-हो कर प्रगट होती और अपना खेल करती है वह हमारा निज स्वरूप है। हमारा हैपना परिणाम है इस प्रकृति का चाहे वह कारण हो, सूक्ष्म हो या स्थूल। इस प्रकृति के कारण सूक्ष्म और स्थूल शरीर के टूट जाने पर यह लय हो जाता है। फिर न हम रहते हैं न हमारा भान या बोध। जो कुछ शेष रह जाता है वह अलख, अगम, अगाध, अनामी है। यही बात स्वामी जी महाराज ने वर्णन की है।

इसलिये मुझे अनुभव से ज्ञात होता है कि आवागवन है। प्रत्येक शरीर जो बना है वह अवश्य टूटेगा। प्रकृति चाहे कारण हो, सूक्ष्म या स्थूल, वह जो शरीर बनाती है वह एक समय अवश्य टूटता है। शरीर का टूट जाना ही मोक्ष या आवागवन से मुक्ति है।

सवाल किया जायेगा कि जब हर एक को मोक्ष हो गई तब फिर संसार या रचना न रहेगी। सुनो! इस प्रकृति में स्वाभाविक रूप से रचना होती रहती है। भिन्न-भिन्न केन्द्र और शरीर बनते रहते हैं। मौज या क्षोभ के सिलसिले में उत्पत्ति का क्रम, चाहे वह स्थूल प्रकृति का नतीजा हो चाहे सूक्ष्म या कारण का, निरन्तर जारी रहता है। बन्ध और

मोक्ष का सम्बन्ध हमारे हैपने या व्यक्तित्व की दृष्टि से है। पूर्णता में यह प्रश्न ही नहीं उठता। मालिक की सृष्टि में न कहीं बन्ध है न मोक्ष। जब तक हमारी दृष्टि मालिके कुल, सर्वेश्वर, निजस्वरूप या अपने आपसे नहीं मिलती-, हमें आवागवन, सार ज्ञान या राजे हक़ से मिल जाती है तब हमारे लिये आवागवन समाप्त हो जाता है; क्योंकि आवागवन का बोध इस बोधशक्ति को होता है, जो कारण प्रकृति की ग्रन्थि या केन्द्र, उस शरीर में पैदा होती है। राधास्वामी मत की तालीम का जहाँ तक सम्बन्ध है वह इतनी सूक्ष्म (लतीफ) और ऊँची है कि हरकस व नाकस की गम वहाँ तक होनी कठिन है, मगर याद रखो कि बातचीत जो कुछ भी होती है वह भाव व विचार के लोक में होती है। जिसने अपना अनुभव प्रगट किया है वह भी और विचारने तथा पढ़ने वाला दोनों ही भाव और विचार के लोक, या मंडल में हैं। उस दशा में जहाँ भाव व विचारों का अन्त हो जाता है, न आवागवन है न कुछ और। फिर वह क्या है? वह है अनाम, अकाल, अमाया, निज स्वरूप (ज़ात) खामोशी, गूँगे का गुड़। वहाँ का अनुभव करके राधास्वामी दयाल ने एक शब्द कहा है। ध्यान पूर्वक पढ़ो-

अरे मन देख कहाँ संसार। झूठे भरम हुआ बीमार॥
भरे तेरे मन में सभी विकार। जतन से उनको दूर निकार॥
होय फिर झूठा जगत असार। गहो फिर गुरु के चरन संभार॥
मिले तब इससे नाम अपार। देख फिर घट में मोक्ष दुआर॥
चलो फिर शब्द विचार-विचार। पाओ एक शब्द सार का सार॥
पड़े क्यों भटको नैंनन वार। झाँक तिल खिड़की उतरो पार॥

गुरु से लेना जुक्ती यार। गुरु बिन नहीं खुले यह द्वार॥
कमानाज ुक्तीत ुमक र९ यार ाल गानास ुरतस हजम नम ार॥
चले फिर सुरत धुनि की लार। चुए जहं पल-पल अमृत धार॥
नाम रस पियो रहो हुशियार। ऋद्धि और सिद्धि रहें तेरे द्वार॥
करो मत उनको अंगीकार। वहाँ से आगे धरो पियार॥
चलो और देखो घर का सार। पहुँचना राधास्वामी के दरबार॥

दाता दयाल का भी कथन है कि संसार दृष्टि-सृष्टि का दृश्य है। यह बिल्कुल सत्य है। जो मनुष्य अपनी दृष्टि या विचार के कारण अशान्त हो या भ्रम में हो, वह अपने निजस्वरूप, अकाल अनाम, अमाया या मालिके कुल की ओर तवज्जह दे और बराबर देता रहे। इस अभ्यास से उसका भ्रम या मौजूदा दृष्टि का दृश्य समाप्त हो जायेगा।

चूंकि तुमने बार-बार लिखा और पूर्ण व्याख्या कराने की इच्छा की अतः कुछ अधिक व्याख्या करता हूँ। सम्भव है कोई पाठक सवाल करे कि तवज्जह या रूह का उतार किस प्रकार होता है और यह किस तरह भिन्न-भिन्न चोला धारण करती है। इसका उत्तर भी दिया जा सकता है मगर निजी अनुभव के बिना बात समझ में आना कठिन है। फिर भी मैं अपना अनुभव वर्णन करता हूँ।

इस रचना में प्रकृति की भिन्न-भिन्न शक्तियों के मंडल या भंडार हैं। जैसे गर्मी का भंडार सूर्य, जल का भंडार समुद्र, वायु का भंडार वायु मंडल आदि-आदि। यह अग्नि, जल पृथ्वी आदि स्थूल तत्व हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म और कारण प्रकृति में भी भिन्न-भिन्न शक्तियों के मंडल या भण्डार हैं। शास्त्रकारों ने समझाने -बुझाने के लिये स्थूल प्रकृति के

मण्डलों या लोकों की मिलीजुली या संगठित सुरत का नाम विराट पुरुष या ईश्वर रखा हुआ है। इसी प्रकार सूक्ष्म प्रकृति के मंडलों या लोकोंक ीि मली-जुलीस ुरतक ान ामब/ह्मअ ौरक ारणप/कृतिके मंडलों या लोकों की संगठित सुरत का नाम सत या हक़ रखा हुआ है। जिस अवस्था से यह प्रकृति उत्पन्न या प्रकट होती है उसको ज़ात (स्वरूप) अकाल, अनामी वगैरह कह देते हैं सत लोक या कारण प्रकृति में भी शरीर होते हैं।

उनके अन्दर जो बोध शक्ति होती है उसका नाम हंस रखा है। यह बोध शक्ति वास्तव में ज़ात, अकाल, अनामी या दयाल, जो कि एक अवस्था है या तत्व है के अन्दर क्षोभ आने से उत्पन्न होती है। इसलिये संतों ने वर्णन किया है कि सत लोक में भी रूहें अपने-अपने प्रकाश में आनन्द से रहती हैं। इन रूहों की उत्पत्ति का कारण मौज या क्षोभ है। वह उत्पन्न होती रहती हैं और बिगड़ती रहती हैं अथवा बनती और टूटती रहती हैं जिस प्रकार समुद्र में बुलबुले पैदा हो-होकर टूटते रहते हैं। आनन्द मुरक्कब (मिश्रित) रचना का गुण है। अनामी धाम में न आनन्द है, न निरानन्द बल्कि ऐसी दशा है जिसको शब्दों से प्रगट नहीं किया जा सकता। इन रूहों या सुरतों का प्राकृतिक रूप से स्वयंमेव धारों या किरणों के सिलसिले में नीचे की ओर उतार होता रहता है। यह नहीं कहा जा सकता कि हम कितने काल से इस शरीर के रूप में हैं और कब तक रहेंगे। कारण प्रकृति से जो कारण शरीर बनता है और उसके अन्दर जो बोध शक्ति पैदा होती है उसका नाम सुरत या रूह है। यह उस समय तक फ़ना (लय) नहीं हो सकती जब तक कि वह अवस्था प्राप्त न हो जिसमें भान व बोध न रहे।

रूहों, सुरतों या बोध शक्ति का पैदा होना और प्रकृति के उतार के सिलसिले में खेलना और फिर शारीरिक भान का, चाहे वह कारण हो अथवा सूक्ष्म या स्थूल, शरीर के साथ नाश को प्राप्त होना बिल्कुल कुदरती उसूल के आधीन है जिस का नाम मौज या रज़ा (भगवत् इच्छा) है। इसलिये जो खेल रचना में हो रहा है मौज और मसलहत से है।

सवाल किया जायेगा कि जब हर काम मौज के आधीन है तब हमारी सब कोशिश, यत्न, प्रयत्न, कर्म, इच्छा निरर्थक हैं -व्यर्थ हैं। यह बात बिल्कुल ठीक है मगर अस्तित्व या बोध शक्ति या शरीर बेकार नहीं रह सकता। गतिमान होना या खेल खेलना अनिवार्य है। तमाम कोशिश , यत्न, प्रयत्न इत्यादि इसी मौज के आसरे हैं कहा है-

करे करावे आप ही आप।

मानुष के कुछ नाहीं हाथ॥ (नानक)

जब इस बात की समझ आ जाती है तो मनुष्य को शान्ति प्राप्त हो जाती है और वह सब कुछ करता हुआ कर्त्तापने से स्वतंत्र हो जाता है। उसकी शारीरिक, मानसिक और रूहानी दशा हर प्रकार के भ्रम और संशय रहित हो जाती है। फिर न आवागवन का वहम रहता है और न मुक्ति की इच्छा।

शरीर त्याग के बाद कोई कहाँ जायेगा! वास्तव में न कोई आता है न जाता है। आना -जाना भी एक वहम है। यह वहम उस समय तक सताता है जब तक जड़ और चैतन्य की ग्रंथि नहीं खुलती या सार भेद की समझ नहीं आती। लेकिन यह ख्याल रहे कि केवल विचार या

पुस्तकीय या बुद्धि गम्य ज्ञान से यह भेद समझ में न आयेगा बल्कि उस समय समझ में आयेगा जब अमल (साधन) के साथ-साथ अनुभव जाग उठेगा।

प्रत्येक व्यक्ति अमल करने के लिये मजबूर है। वह अमल क्या है? संकल्प -विकल्प को छोड़ना। संकल्प-विकल्प के अनुभव के साथ-साथ कुदरती तौर पर मनुष्य के अन्दर उदासीनता आनी शुरू होती है। मनुष्य एक दशा में रहना पसन्द नहीं करता। विपरीत अवस्था अथवा समय-समय पर उलट फेर स्वयमेव मनुष्य को एक दशा में नहीं रहने देता इसी का नाम काल है।

काल रचा हम समझ बूझ के।
बिना काल नहिं चेत जीव के ॥ (रा०सा०)

प्रत्येक व्यक्ति स्वयंमेव उन्नति के पथ पर चल रहा है अथवा एक अवस्था के अनुभव के बाद ऊँची अवस्था का लालायित है और उसको अपने व्यक्तित्व को मिटाना है। **मुक्ति व बन्धन वास्तव में दिली हालतों के नाम हैं।** जब मनुष्य के भाव व विचार सुखदायक नहीं रहते तब वह उनको छोड़ने के लिये मजबूर हो जाता है। एक ही विचार की दो सुरतों का नाम बन्धन और मुक्ति है।

ऐ भगवानसिंह! चूँकि शारीरिक स्वास्थ्य की खराबी के कारण तुम्हारे भाव व विचार सुखदाई नहीं रहे इसलिये उनसे बचने का ख्याल प्रबल है। भाव और विचार के जगत में कोई भी मनुष्य एक रस नहीं रह सकता हाँ! सार अनुभव, सार भेद या सार ज्ञान के प्राप्त होने पर ,जिसके लिये अमल या करनी या अनुभव ज़रूरी शर्त है, मनुष्य भावों

की ओर से लापरवाह हो जाता है। यह नहीं कि भाव या विचार ख़तम हो जाते हैं बल्कि वह दिखाई नहीं देते।

विश्वास रखो! यह संसार किसी शक्ति या तत्व के सहारे पर बना है और मौज के आधीन इसका कार्य स्वंयमेव चल रहा है। इसलिये यदि तुम मौज को समझ कर बेफिक्र और बेग़म रहो तो बहुत अच्छा हो। **न हम अपनी खुशी से आये न अपनी खुशी से चले।** चूँकि बाह्य प्रभाव मनुष्य पर बराबर पड़ते रहते हैं इसलिये वह विवश होकर बुद्धि के चक्र में आकर भ्रम और संशय में फंस जाता है। मगर बाह्य प्रभावों का पड़ते रहना और मनुष्य का उनसे प्रभावित होते रहना लाज़िमी (अनिवार्य) है। इसलिये संतों, फ़कीरों और महापुरुषों ने इल्मी समझ (बुद्धिगम्य ज्ञान) के साथ-साथ अमली जीवन व्यतीत करने की शिक्षा दी है। वह शिक्षा यह है:-

(अ) अपने लिये न जीओ बल्कि औरों के लिये जीओ। निष्काम कर्म करो ताकि बाह्य प्रभाव असर न करें और उनका असर मनुष्य की ज़ात (आत्मा) पर कम पड़े।

(ब) अपने आपको स्थूल, सूक्ष्म और कारण प्रकृति से अलग करने की कोशिश करो। उसका सरल तरीक़ा सुरत शब्द योग का साधन है। शब्द योग कारण प्रकृति से या रूहानी भान या बोध से और सुमिरन योग स्थूल प्रकृति से या शारीरिक भावों से अलग करता है। हम या हमारा स्वरूप इस प्रकृति की ओर झुकाऔर संसार में फँस गया। संसार का त्याग फिर अपनी ज़ात (निज स्वरूप) में वापिसी दिलाता है। ख़बरदार! त्याग का ग़लत अर्थ न समझना। जिस तरह आये उसी तरह जायेंगे। कभी-कभी ख्याल आता है कि कौन आया और कौन गया-

आप हमने दुनिया बनाई आप आ खेले यहाँ।
आप हम हैं लामकानी आप हम हैं ला जमां॥

मौज आई आप में आकर के बन गये इंसान।
आप जब सूझी वतन की, हो रहे हैं लामकान॥

यह पता देने को हैं, रखे अभी खिरकये इंसान।
समझने वालो समझो गर नहीं हो तुम नादान॥

ज़ात का है खेल यह सब, इसके सिवा और कुछ नहीं।
ढूंढते किस को थे फिरते, और थे सर गरदान॥

मुरशिद कामिल मिले जो थे हमारी ज़ात का ही रूप।
पता दे गये यह होकर के हम पर मेहरबान॥

शब्द और प्रकाश के सहार हमारे स्वरूप का उतार होता है और शब्द और प्रकाश के सहारे ही वापिसी भी होगी। सम्भव है तुम विश्वास न करो लेकिन बात सच्ची है। शारीरिक दृष्टिकोण से हम गर्मी या ताप हैं। जहाँ शरीर में गर्मी नहीं रहती वहाँ भान या बोध भी नहीं होता। यह गर्मी (ताप) सूर्य से आई और खुराक द्वारा वीर्य में मिली और शारीरिक जीवन का प्रारम्भ हुआ। सूर्य अर्थात् ताप का भंडार स्वयं किसी से निकला है क्योंकि ताप या गर्मी अमिश्रित या अकेली वस्तु नहीं है बल्कि दो वस्तुओं की गति या रगड़ का नतीजा हैं। इसलिये हमारा स्वरूप गर्मी से भी सूक्ष्म कोई अन्य वस्तु है जिसको मैं यहाँ मानसिक दृष्टि से सूक्ष्म प्रकृति या मन या ब्रह्म कह दूँ तो अनुचित न

होगा। स्वयं ब्रह्म में गति का माद्दा मौजूद है इसलिये हम और हमारा स्वरूप सूक्ष्म प्रकृति से भी ऊपर है। हम सत भी नहीं है क्योंकि सत में भी द्वन्द की रचना में होता है। हम सत के भी आधार हैं। सत, विचार या मन और देह हमसे प्रगट होते हैं और खेल खेलते हैं। हम न हों तो आनंद, विचार और देह सब ही नाश हो जाते हैं।

हम हैं ज़ात तुम हो ज़ात, ज़ात की तरफ निगाह रहे।
खेलो कुछ दिनों फिर न, सिफात रहे न ज़ात रहे॥

ज़ात को ज़ात कहते हैं, समझाने बुझाने के लिये।
ज़ात में जब हुये वासिल,न ख्लाले ज़ात है न सिफ़ात रहे॥

दूसरा प्रसंग

(प्रवचन-अप्रैल सन् १९४५ फिरोज़पुर)

भगवान- क्या आवागवन या जन्म मरण ठीक है?

फ़कीर-हाँ, ठीक है।

भगवान-क्या कोई बता सकता है कि वह पहिले किस जन्म में था और आगे कहाँ जायेगा?

फ़कीर- हाँ, मगर इसका उत्तर देने से पहिले उत्तरदाता को उसके जीवन के हालात का पूर्ण परिचय होना चाहिये। जब तक पूर्ण परिचय न हो और उत्तरदाता सूक्ष्म से सूक्ष्म अति सूक्ष्म समझ वाला न हो उसको इस सवाल के उत्तर का इल्म नहीं हो सकता।

भगवान-बात समझ में नहीं आई। व्याख्या की आवश्यकता है।

फ़कीर- समझ में कैसे आवे? जब तक यह मालूम न होगा कि मनुष्य क्या वस्तु है अथवा दूसरे शब्दों में निजस्वरूप के ज्ञान का पूर्णतया ज्ञाता न होगा, वह इस विषय को भी नहीं समझ सकता। हाँ, यदि पहिले यह ज्ञान हो जाये तो फिर किसी दूसरे व्यक्ति के भाव, विचार स्वभाव और परिस्थितियों का पूर्ण परिचय होने पर वह बतला सकता है कि अमुक मनुष्य पहिले जन्म में क्या था और अब क्या बन गया या इसका पहिला व दूसरा जन्म किस-किस दशा में था या हुआ था।

भगवान-इसका कोई प्रमाण आपके पास है?

फ़कीर- यों तो आपको हजारों प्रमाण मिल सकते हैं और धार्मिक ग्रंथ इनका समर्थन करते हैं मगर अपने जीवन के दो प्रमाण देता हूँ।

१. जिस समय घर पर मेरी माता का देहान्त हुआ, मैं और मेरा छोटा भाई रायसाहब सुरेन्द्रनाथ बगदाद में थे। वहाँ मुझे तार मिला कि माता जी का शरीर पूरा हो गया। मैंने उसी समय कहा था कि हमारी माता की रूह लड़के के रूप में रायसाहब के घर पैदा होगी और वही हुआ।

२. स्वयं अपने पिछले जन्मों के हालात तुम्हें क्या सुनाऊँ क्योंकि इनका कोई सबूत नहीं दिया जा सकता। अतः विश्वास आना कठिन है। हाल ही में मेरी लड़की प्रेमप्यारी का देहान्त हुआ। जब मुझे तार मिला तो एक मित्र से जो मातमपुर्सी के लिये आया था, मैंने कहा कि प्रेम प्यारी तुम्हारे घर आयेगी और वह ठीक हुआ।

भगवान- अच्छा क्या आप बता सकते हैं कि रूह शरीर से निकलकर किस प्रकार दूसरा शरीर धारण करती है।

फ़कीर- हाँ, बता सकता हूँ। मगर क्या समझने की भी योग्यता है?

भगवान- कोशिश करूँगा कि बात समझ में आ जाये।

फ़कीर- अच्छा सुनो! आत्मिक, मानसिक और शारीरिक भाव अन्य वस्तु है और जो वस्तु रूह (आत्मा), मन और शारीरिक जीवन का आधार है अथवा जिसके सहारे आत्मा, मन और देह का खेल होता है, वह और वस्तु है। इसका ज्ञान केवल उस मनुष्य को हो सकता है जिसने अपने निजस्वरूप या मालिकेकुल या अनामी (पुरुष) के प्रेम में अपने-आपको देह, मन और रूह से अलग करके देख लिया हो। दूसरे के लिये समझना कठिन काम है। हाँ, बुद्धि से किसी हद तक समझ आ

सकती है, लेकिन बुद्धि द्वारा समझ का विश्वास पक्का और टिकाऊ न होगा।

भगवान- धीरे-धीरे समझाते चलिये, सम्भव है कुछ समझ आ जाये। पहिले यह बतलाइये कि रूह (आत्मा), मन और शारीरिक जीवन की पहिचान क्या है?

फ़कीर- शारीरिक जीवन को तुम समझते हो। वह देह के अहसास (भान) का खेल है। लेकिन यदि किसी समय तुम्हारी तवज्जह किसी विचार में लीन होकर देह की ओर से बेसुध हो जाये तो तुमको देह का भान नहीं होता। इससे साबित हुआ कि शारीरिक जीवन के बोध करने वाला कोई और है। दूसरा जीवन है मन या विचार का, अर्थात् जब तवज्जह विचार करते-करते मन से भी ग़ाफिल (बेसुध) हो जाती है अथवा विचार शून्य हो जाती है, जिसकी एक मिसाल गहरी नींद है, जब स्वप्नावस्था नहीं रहती, तब मनुष्य को मानसिक जीवन का भी बोध नहीं होता। यह सबूत है कि असली वस्तु कोई और है तथा मानसिक व शारीरिक जीवन और है। इसी प्रकार यदि असली वस्तु अपने आपको इस देह मन और रूह की ओर आकर्षित न करे तो इनका खेल बन्द हो जाता है। विषय बड़ा बारीक है। व्याख्या के लिये शब्द नहीं मिलते। खैर! कहो यहाँ तक कुछ समझे या नहीं।

भगवान- हाँ, बहुत कुछ समझ रहा हूँ। मगर यह बतलाइये कि रूहानी जीवन, जिसको आप मन या विचार के परे का जीवन कहते हैं, के परे क्या चीज़ है?

फ़कीर-**बिन करनी अभ्यास के कहन सुनन से दूर।** (रा० स्वा०) तब भी इतना कह सकता हूँ कि रूहानी (आत्मिक) जीवन एक प्रकार की बोध शक्ति है जिसमें सरूर या आनन्द रहता है मगर इस आनन्द में विचार की फुरना नहीं होती। इससे आगे एक और अवस्था आती है जहाँ इस आनन्द के बोध या ज्ञान का भी अभाव हो जाता है और हमारा अस्तित्व अपनेपन के बोध को खोकर हर प्रकार के खेल या खेल के भान या बोध को भूल जाता है। यह इस जीवन की दृष्टि के अन्तिम अवस्था और रचना के दृष्टिकोण से जीवन की आदि अवस्था है जिसका नाम मालिके कुल, जात, आनामी या अकाल पुरुष रखा हुआ है।

भगवान- खूब समझा। अब यह बताइये कि वह ज़ात, अनामी, अकाल या निर्बोध, (बेअहसासी) अवस्था किस तरह नीचे उतरी, किस कारण आवागवन में फँसी और फिर कब और किस तरह वापिस होती है?

फ़कीर- इब्तदाई (आदि) अवस्था, अकाल या अनामी या ज़ात में जौहर (विशेषता) है। इसमें सदा अपने आप में ठहरे रहने का गुण नहीं है बल्कि मौज से या क्षोभ के तौर पर या स्वाभाविक ढंग पर इसमें हिलोर उठती रहती है।

भगवान- कोई दृष्टान्त दीजिये कि समझने में आसानी हो।

फ़कीर- मैं इस हालत को प्रगट करने के लिये कोई मिसाल नहीं दे सकता क्योंकि वह अनुभव सिद्ध है। संसार में उसकी कोई मिसाल नहीं है। न शब्द ही मिलते हैं कि उस हालत की सही तस्वीर खींच सकूँ। फिर भी अपना निज अनुभव बतलाता हूँ। मैं इस अनामी या

लामकानी (शून्य) हालत में हमेशा नहीं ठहर पाता। उस अवस्था में चले जाने के बाद फिर उत्थान होता है। दूसरा सबूत यह है कि यदि ज़ात (मालिक कुल) में क्षोभ में आने का यह गुण न होता तो इस सृष्टि की रचना न होती। यह रचना सदा से है और सदा रहेगी। इसकी गणना न आज तक कोई कर सका न भविष्य में ऐसी आशा है।

भगवान- अच्छा आगे चलिये। उत्थान के पश्चात् क्या आता है?

फ़कीर- उस क्षोभ या मौज से एक प्रकार की रचना (action) होती है और उस रचना (action) से एक और वस्तु उत्पन्न होती रहती है जिसमें रूप, रंग और निशान होते हैं। मिसाल के तौर पर समझो-जैसे पानी के गति में आने से बिजली पैदा होती है इसी प्रकार इस ज़ात, मूलतत्व अनामी या अकाल पुरुष के क्षोभ में आते रहने से एक प्रकार की वस्तु बनती रहती है जिसको हम प्रकाश (नूर) कह सकते हैं। क्षोभ के सिलसिले में गति होने के कारण प्रकाश के साथ-साथ शब्द भी प्रकट होता है और फिर उस प्रकाश का एक केन्द्र या मण्डल स्थित हो जाता है। यह मण्डल प्रकाश और शब्द का भण्डार होता है। संतों की भाषाम ेंइ सकास तलोकह ै ाय हच ैतन्यद ेशक हलाताह ै इ सका आकार कितना विशाल होगा, इसका हिसाब लगाना बुद्धि से परे है। केवल अनुभव से कुछ अनुमान लगाया जा सकता है लेकिन इसका प्रगट करना भी अनन्त , अनन्त अनन्त की हद तक रह जायेगा।

भगवान- कोई प्रमाण?

फ़कीर- इसका प्रमाण भी अपना निज अनुभव है। हमारा हैपना सदा कायम रहता है। अपने अन्तर में प्रवेश होकर देखो। देह और मन का

विचार छोड़ दो। तब सिवाय अपने हैपने के और क्या पाओगे। मैंने करके देख लिया है। अन्य लोग करके देख सकते हैं। हम अपने हैपने से बाहर जा कहाँ सकते हैं। यद्यपि हम देह और मन की भावनाओं या खेल में लय होकर अपने हैपने (अस्तित्व) को भूल जाते हैं, तो भी यह हैपना कभी हमारा साथ नहीं छोड़ता। अत: इस अवस्था में इस देश में जहाँ से क्षोभ उत्पन्न हुआ सिवाय चैतन्यता के और कुछ नहीं है। संतों ने इसकी कई श्रेणी नियत की हैं।

है पना या चैतन्य देश

(Consciousness of life without feeling of senses)

भगवान-हम जब इस अवस्था में होते हैं तो क्या होते हैं?

फ़कीर- हम हैं मगर शारीरिक रूप से व्यक्तित्व का अभाव होता है।

भगवान- क्या वहाँ आवागवन है?

फ़कीर- पहिले इस बात को भली प्रकार समझ लो फिर आगे चलो। हाँ तो मैंने बताया कि ज़ात (मूलतत्व) ने अपना अनाम पना छोड़कर चैतन्यता का चोला लिया क्योंकि कोई वस्तु बिना देह के नहीं रह सकती। प्राकट्य में आने के लिये पात्र, स्थान और देह की आवश्यकता है। चैतन्य देश या Super Conciousness वास्तव में हमारी ज़ात (स्वरूप) या परम तत्व की देह है और वह इस देह में आकर अपने को

प्रकट करती है। यह चोला है, खोल है, उतार है। यहाँ तक ज़ात (स्वरूप) हमेशा अपने आप में खेलती है।

भगवान– इस देश में या इस अवस्था में क्या रूहों का अस्तित्व अलग–अलग होता है या एक ही होता है?

फ़कीर– अपने अनुभव के आधार पर उत्तर देता हूँ। इस चैतन्य देश में ज़ात (स्वरूप) ने अनगिनित रूप धारण किये। इनको हम सुरतें (आत्मा) कह सकते हैं मगर यहाँ एक सुरत का सम्बन्ध दूसरी से नहीं है। प्रत्येक सुरत अपने–अपने चैतन्यपने, निज आनन्द या मस्ती की हालत में खेलती है मगर एक दूसरी का ज्ञान नहीं रखती। अभ्यास या साधन के समय जब मैं इस अवस्था में होता हूँ तो वहाँ अपने आपको आनन्द या अपने हैपने में होने के सिवाय किसी अन्य का अस्तित्व भान नहीं करता मगर उत्थान के बाद नीचे आकर सृष्टि के ख्याल से अनुभव करता हूँ कि केवल मैं ही अकेला नहीं था जो उस अवस्था में था बल्कि और भी हैं। नीचे के जगत में आने पर अनुभव की दृष्टि से भान होता है कि सुरतें (रूहें) असंख्य और अनगिनत हैं। लेकिन उस हालत में मुझे सिवार्या नजअ ानन्दके अ ौरक ोईन हींभ ासता ाप ोथीस ारव चन (कविता भाग) में यही बात प्रकट की गई है कि सत लोक में रूहें अपनी–अपनी दृष्टि में निरत करती हैं और सत–पुरुष का दर्शन पाकर तृप्त रहती हैं। अभिप्राय: यह है कि ज़ात (परमतत्व) की अंश अपने हैपने में जो सतपुरुष है, मग्न रहती हैं, क्योंकि जहाँ देखने का सवाल है वह अपने हैपने या सतपने में नहीं होता बल्कि वह नीचे की अवस्थाओं या उतार की हालत में होता है।

भगवान– वहाँ हम क्या खाते, क्या पहिनते और किस तरह बातचीत करते हैं?

फ़कीर– वहाँ आनन्द और मस्ती खाते हैं। हमारा बोलना वह है जो इस चैतन्य रूप की हरकत का शब्द है और प्रकाश हमारी पोशाक है या देह है। वहाँ और किसी वस्तु की आवश्यकता ही नहीं है। आनन्द खाते आनन्द पीते और आनन्द लेते हैं।

भगवान– कहते हैं वहाँ प्रकाश १२ सूर्य के बराबर हैं।

फ़कीर–सुना हुआ मैंने भी है मगर मैं कह नहीं सकता। निज अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि वहाँ प्रकाश अवश्य बहुत अधिक है मगर यह कहना है कि वह १२ सूर्य के बराबर है मेरी शक्ति से परे हैं।

भगवान– क्या इस स्थान की पहुँची हुई सुरत (रूह) फिर आवागवन में आती है?

फ़कीर– हाँ, मैं अब इस शरीर में रहता हुआ वहाँ से ऊपर भी जा सकता हूँ और नीचे भी आता हूँ तो इससे ज्ञात हुआ कि यहाँ भी चढ़ाव और उतार का सिलसिला मौजूद है जो कि मौज के आसरे है या सत में क्षोभ आने के आसरे हैं। वहाँ से रूहों का नीचे के मण्डलों में उतार भी होता है और ऊपर के मण्डलों में चढ़ाव भी होता है। यह मैं अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि यहाँ भी आवागवन है अर्थात् आना और जाना लाज़िमी है क्योंकि जो वस्तु क्षोभ में या गति के घेरे के अन्दर है उसका गतिमान होना लाज़िमी है। इसलिये इस स्थान पर पहुँची हुई रूह भी आती –जाती चढ़ती उतरती रहती है।

भगवान– अच्छा! अब यह बताईये कि तवज्जह या सुरत इस पृथ्वी लोक पर कैसे आई?

फ़कीर– सुनो! यह तवज्जह या सुरत (आत्मा) वास्तव में ज़ात, परमतत्व, अकाल या अनामी का छोटे से छोटा अंश है। जिस प्रकार किरणों के भंडार का नाम सूर्य और बूंदों के भंडार का नाम समुद्र है इसी प्रकार सुरतों (रूहों) का भंडार ज़ात, परमतत्व या अनामी या अकाल पुरुष कहलाता है और उसके प्राकट्य का देह चैतन्य देश है। हर एक अंश या कारण या सुरत जो उस ज़ात (परमतत्व) की अंश है, का अपना व्यक्तिगत देह अर्थात् चेतन्य पना उसके साथ है। वह चैतन्य पना उसका अपना देह या हैपना कहलाता है। एक दृष्टि से वहाँ सब सुरतें एक ही हैं और एक दृष्टि से अलग-अलग समझ लो। इस चैतन्य देश या प्रकाश व शब्द के देश से एक प्रकार का स्थूलता का माद्दा हमेशा खारिज होता रहता है जिस प्रकार चिराग़ से धुआँ निकल-निकल कर ऊपर छत में अपना मण्डल बनाता रहता है अथवा अग्नि से चिनगारियाँ। इसका नाम छाया कहो, काल कहो, सूक्ष्म तत्व कहो, ब्रह्म कहो या ब्रह्माण्डीय मन कहो अथवा कोई और नाम रखो, तुमको अख्तयार है। वह स्वयं भी प्रकाश से निकलने के कारण प्रकाशमान होता है। इस काल, ब्रह्म या सूक्ष्म पदार्थ से जो इस चैतन्य देश से स्वाभाविक तौर पर निकलता रहता है, फिर अपनी बारी पर दूसरे लोक या मण्डल बनते और बिगड़ते रहते हैं। चूंकि इस सूक्ष्म पदार्थ या ब्रह्म में अपनी शक्ति या एनर्जी (energy) यथेष्ट नहीं होती इसलिये उसको बदर तूर प्रकाश और शब्द आदि की शक्ति सतलोक या चैतन्य देश से मिलती रहती है और वह शक्ति अनेक किरणों के रूप में इस सूक्ष्म पदार्थ के साथ मिलकर नीचे की रचना करती रहती है। हमने उन किरणों का नाम सुरतें (रूहें) रखा हुआ है।

भगवान– सत लोक या चैतन्य देश से जो सूक्ष्म पदार्थ निकलता रहता है उससे रचना कैसे होती है?

फ़कीर– देखो! प्रकृति में हर प्रकार की बिजली की शक्ति अपने इर्द-गिर्द एक प्रकार का घेरा बनाती रहती है जिसमें उसका असर रहता है। अप्राकृतिक बिजली का भी अपना घेरा होता है। इसी तरह इस चैतन्य देश का घेरा या मण्डल सूक्ष्म माद्दा, ब्रह्म, काल या मन का भंडार कहलाता है। चूंकि यह अत्यन्त प्रकाशमान और शक्तिवान होता है इसलिये इसका भी अपना घेरा होता है और विभिन्न धारों और किरणों का, जो उस घेरे या मण्डल के अन्दर होती हैं, परस्पर मिलाप होता है। यह धारें दो प्रकार की होती हैं। एक घन (Positive सत) और दूसरी ऋण (Negative असत) और तीसरी शक्ति सुरत की होती है जो ऊपर से ली हुई होती है। चूंकि सुरत (रूह) मूलतत्व या ज़ात की अंश होती है इसलिये इसके मिलाप से रचना होने लगती है। अकेली धन(Positive) व ऋण (Negative) धारें उस समय तक रचना नहीं कर सकती जब तक सुरत की शक्ति प्राप्त न हो।

भगवान– यह रचना किस प्रकार की होती है?

फ़कीर– सत लोक या चैतन्य देश की रचना मिलौनी से रहित है अर्थात् वहाँ केवल चैतन्यता है इसलिये वहाँ मस्ती या आनन्द की रचना होती है। यद्यपि आनन्द तो यहाँ भी होता है मगर साथ ही बुद्धि और विचार की शक्ति पैदा हो जाती है जिसका नाम विज्ञान भी रखा जा सकता है या विवेक भी कह सकते हैं। यहाँ भी आवागवन होता है। ज़ात (मूल तत्व) या उसका अंश जिस पर सतलोक में केवल चैतन्यता का गिलाफ

था अब यहाँ पर सूक्ष्म माद्दा का दूसरा गिलाफ चढ़ जाता है। जहाँ वह आनन्द ही आनन्द लेती थी, अब नीचे उतरने पर उसमें संकल्प विकल्प का अँखुआ फूटा। वह खुला विवेक शक्ति पैदा हुई और बढ़ती गई।

भगवान– विवेक शक्ति जिसका अभी जिक्र आया है उसमें पहिले से मौजूद थी या नई उत्पन्न हुई और वह कैसे बढ़ी?

फ़कीर– ज़ात (परमतत्व) या अनामी के अंश में यह विवेक शक्ति नहीं थी। चैतन्य देश में वह बहुत ही कम थी जिसका नाम वहाँ आनन्द का बोध था मगर सूक्ष्म माद्दा (भूत) से मेल होने पर उसने तरक्की की और बढ़ती गई। तुम देखते हो कि विवेक बाह्य प्रभावों के बिना पैदा नहीं होता। इसी प्रकार जब सूक्ष्म माद्दे का स्पर्श (touch) मिला तब विवेक या बुद्धि पैदा हुई।

भगवान– इस विवेक या ज्ञान के कितने दर्जे हैं?

फ़कीर– सहस्त्रों अर्थात् जिस-जिस प्रकार के सूक्ष्म मादा की मिलौनी होती रहती है उसी-उसी प्रकार का विवेक,- या विचार पैदा होता रहता है और सूक्ष्म माद्दे की दशा का विस्तार आदि के अनुसार विवेक का भान पैदा होता रहता है। वहाँ इनका नाम भिन्न-भिन्न प्रकार के लोक रखा हुआ है जैसे गंघर्व लोक, राम लोक, कृष्ण लोक आदि।

भगवान– इन लोकों में क्या होता है?

फ़कीर– ज़ात की अंश (आत्मा) भिन्न-भिन्न प्रकार के आनन्द का भान करती है जो कि सूक्ष्म माद्दे की मिलौनी का परिणाम है और यह इसका आवागवन है।

भगवान– ठीक है समझ गया। क्या यहाँ से भी ज़ात की अंश (आत्मा) वापिस जा सकती है?

फ़कीर– हाँ, जा सकती है। जब कभी इस देह या स्थूल जगत से कोई ज़ात की अंश (किसी सत पुरुष की रूह) वापिस जा रही हो और उस लोक में होकर गुजर रही हो, तो उसके प्रकाश से जिस अंश (आत्मा) का सम्बन्ध पैदा हो जाये, वह वापिस जा सकती है। मगर ऐसा बहुत कम होता है क्योंकि उतरने वाले अंश (आत्मा) का रुझान नीचे की ओर होता है।

भगवान–समझ गया। इससे यह साबित होता है कि संत पुरुष जब उस लोक से गुज़रते हैं तो उन लोकों की बहु सी रूहों को साथ ले जाते हैं। क्या यही अभिप्राय है?

फ़कीर– हाँ,

भगवान– फिर नीचे की ओर रुझान रखने वाली सुरतों का उतार किस तरह होता है?

फ़कीर– वह धारें या किरणों या ज़ात की अंश (रूह) अपने साथ ब्रह्म, मन या सूक्ष्म माद्दे का गिलाफ साथ लिये होती है। अब उनके चारों ओर एक और घेरा पैदा होता है जो स्थूल माद्दे का होता है। यह स्थूल माद्दा सूक्ष्म माद्दे से इस तरह पैदा होता है जैसे जलते हुये चिराग से धुआँ। ज़ात कीअंश (धारें या रूहें) एक और स्थूल माद्दा (भूत) आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के रूप में प्रगट हो रहा है। इसी प्रकार रचना का सिलसिला जारी रहता है और वह ज़ात (परमतत्व) की अंश का उतार होता रहता है और वह भिन्न-भिन्न योनियों में फंस कर

अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भान या बोध रखती हुई खेल – खेलती रहती है तथा सुख-दुख, फिक्र – बेफिक्री आदि-आदि का बोध रखती है।

भगवान– क्या वह सूक्ष्म और कारण माद्दा नाश होता है या हो सकता है?

फ़कीर– नहीं, इसकी हालत और रूप बदलता रहता है, नाश नहीं होता।

भगवान– तो फिर आवागवन अथवा हालत व रूप की तब्दीलियों से छुटकारा असम्भव है।

फ़कीर– ज़ात (मूलतत्व) बिना देह के कभी नहीं रह सकती। सत के साथ सत्ता या, ज़ात के साथ सिफात (गुण) का होना जरूरी है। हाँ, गुणों की दशा भिन्न-भिन्न हो सकती है।

मेरी भी एक अरदास है, सुन लो प्रीतम प्यारे।

इस विचार से संतों ने प्रलय के बारे में कहा है कि सतलोक में प्रलय नहीं होती। कारण यह है कि सत लोक अनामी या ज़ात (स्वरूप) की देह है।

भगवान– अब तक आपने सुरत के नीचे की ओर उतार का जिक्र किया है। अब यह बताइये कि हम शरीर त्याग करने पर किस तरह दूसरा देह धारण करते हैं।

फ़कीर– इस शरीर त्याग के बाद ज़ात की अंश(आत्मा) अपना सूक्ष्म शरीर यानी विचार का शरीर रखती है। देह से निकलने के बाद वह उन विचारों की ओर खिंचती या राग़िव होती है जिससे उसको जीवन भर

अनुराग, दिलचस्पी या प्रीति रही है। इसलिये विचार का वह सूक्ष्म तत्व उसको अपने जैसे विचारों की ओर ले जाता है और वह ऐसी जगह जाकर देह धारण करता है जहाँ उसके विचार की आसक्ति फुर सके या बढ़ सके, अर्थात् जिनका सम्बन्ध पंच भौतिक (Solid Matter) पदार्थों से होता है वह स्थूल देह धारण करते हैं। जिनका रुझान भौतिक पदार्थों से नहीं होता, वह ऊपर के सूक्ष्म पदार्थ (Matter) के लोकों में चले जाते हैं। जिनका सम्बन्ध रूहानी जगत से होता है वे सीधे रूहानी स्थानों या लोकों की ओर झुकते हैं। कोई-कोई जिनका सम्बन्ध केवल निजस्वरुप , अकाल या अनामी पुरुष से होता है वह व्यक्तित्व से छुटकारा पाकर निज- स्वरूप में लय हो जाते हैं।

भगवान– दुबारा जन्म लेने के सिलसिले में क्या रूह उसी समय दूसरा देह धारण कर लेती है जब से इसका आरम्भ माँ के पेट में होता है या कुछ देर बाद?

फ़कीर– उसी समय भी और कुछ देर बाद भी। किसी विशेष दशा में रूह किसी जीवित व्यक्ति के अन्दर भी हिलोल करके अपना काम करती है मगर ऐसी रूह वह होती है जो विशेष शक्तिशाली होती हैं।

वास्तव में ज़ात की अंश (आत्मा) का कोई रूप नहीं है। प्रकाश और शब्द प्रकृति या माद्दे से प्रगट होते हैं। वह अपने इर्दगिर्द प्रकाश, शब्द और ख्यालात अर्थात् सूक्ष्म पदार्थ का खोल या गिलाफ रखती है और प्रकृति के नियमानुसार उस गिलाफ के प्रभावों से प्रभावित होकर दूसरे गिलाफों की ओर झुकती है। सोचना, समझना, गति, विवेक विचार सब कुछ माद्दे की मिलौनी का गुण है। इस माद्दे की संयुक्त सुरत

का नाम कर्त्तापुरुष है , काल पुरुष है। योनि, आवागवन आदि सब काल पुरुष की दया का नतीजा हैं। यदि कोई व्यक्ति काल पुरुष की सीमा से बाहर हो जाये तो फिर वह आवागवन से छूट जाता है।

इस विषय पर और कुछ पूछना हो तो पूछ सकते हो। पत्र व्यवहार से यह रहस्य नहीं खुलता। वैसे तो यथार्थ हल मनुष्य के अपने हृदय के अन्दर है फिर भी ज़बानी बातचीत से तुम्हारे संशय और भ्रम चले जायेंगे।

भगवान– जैसा कि आपने कहा है कि सतलोक में आनन्द ही आनन्द है। आदि में जब आनन्द की अवस्था थी तो फिर दुख की उत्पत्ति कहाँ से और क्यों हुई?

फ़कीर– अभी तक सृष्टि या रचना का नियम तुम्हारी समझ में भली प्रकार नहीं आया। यदि समझा है तो वह बुद्धि द्वारा समझा है अनुभव से नहीं। इसलिये ऐसा सवाल करते हो। अच्छा सुनो।

देह के परमाणुओं में अनियमितता आ जाने से अथवा सूक्ष्म या मानसिक शरीर के नियमानुकूल न रहने से जो मन या विचारों द्वारा दुख का भान होता है वह वास्तव में कोई दुख नहीं है और न ही कुदरत में दुख का कोई सवाल है। इस दुख का कारण आदत का कानून है। जो वस्तु दुख मनाती है वह न तो देह है , न मन है, न रूह है। फिर वह क्या है?

मैं उसे जानता हूँ पर अफसोस है उसे शब्दों में प्रगट नहीं कर सकता। वह है मगर अहसास में नहीं आती। वह है मगर देखी नहीं जा सकती। वह है मगर पहचानी नहीं जा सकती। वह है अवश्य मगर

उसका वर्णन कठिन है। इससे सब कुछ जाना जाता है, पहचाना जाता है, भान किया जाता है। वह आप ही आप है। कहने –सुनने के लिये संत इसको सुरत (रूह) कहते हैं अथवा ज़ात (स्वरूप) समझ लो। इसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये अभ्यास जरूरी है ताकि उसको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अवस्थाओं से अलग होने का अवसर मिले और निज़ अनुभव प्राप्त हो। यदि ऐसा नहीं होता है तो बुद्धि द्वारा अनुभव कुछ अंश तक ही लाभदायक हो सकते हैं।

ध्यान पूर्वक सुनो ! शरीर की प्रकृति में कोई दोष या गड़बड़ी पैदा होने से शारीरिक भान में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन के कारण या प्रभाव से शारीरिक दुख का भान होता है। क्यों? क्योंकि उस वस्तु (सुरत) को पहिले एक खास ढंग पर अपना खेल खेलने की आदत थी। अब चूंकि उसमें रुकावट हुई अथवा परिवर्तन हुआ, आदत के खिलाफ काम हुआ, इसलिये वह तकलीफ महसूस करती है। देह के रक्तसंचार में सुरत की धार बहती रहती है। रक्त-संचार में रुकावट हुई। सुरत ने दुख महसूस किया। मनुष्य को मानसिक रूप से एक विशेष प्रकार के विचारों से सम्बन्ध रखने की आदत होती है और जब बाह्य प्रभावों या अन्य कारणों से उन विचारों के अनुकूल कार्य होता दिखाई नहीं देता तब वह तकलीफ मानती या महसूस करती है। बात बारीक है। मेरे मन्तव्य पर ध्यान रहे वर्ना कहना सुनना व्यर्थ होगा।

इससे स्पष्ट रूप से साबित हो गया कि दुख न देह में है , न मन में है बल्कि तवज्जह(सुरत) के रुझान को जबरदस्ती बदलने में है।

यदि मनुष्य अपनी तवज्जह (सुरत) पर काबू रखे अथवा अपने

आपको ज़ब्त या संयम में रखने की आदत डाल ले और प्रतिकूल अवस्थाओं के समय वह अपनी तवज्जह का रुख सहूलियत से बदलने के योग्य हो जाये तो जिस दुख की तुम शिकायत करते हो वह न रहेगा। कबीर साहिब की बाणी है–

तन धर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त की बात कहत हूँ, सब का किया विवेका हो॥
घाटे बाढ़े सब कोई देखा, क्या गिरही बैरागी हो।
शुक -आचार्य दुःख के कारण, गर्भ से माया त्यागी हो॥
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तापस को दुख दूना हो।
आशा तृष्णा सब घट व्यापी, कोई महल नहीं सूना हो॥
साँच कहे तो कोई न माने, झूठा कहा न जाई हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो॥
अवधू दुखिया, भूपत दुखिया,दुखी रंक विपरीती हो।
कहें कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो॥

यों तो कुदरत स्वयं तवज्जह के रूख को पलट देती है,जैसे सख्त चोट लगी,बेहोशी आ गई या जहाँ कोई कष्ट हुआ और तवज्जह ने उससे बचाव का ढंग किया। इसी वास्ते लोगों से नाम का साधन रोचकता देकर कराया जाता है कि मानसिक व शारीरिक दुःख के समय मनुष्य अपनी तवज्जह (सुरत) को सुमिरन, ध्यान और भजन में लगाकर इन दुःखों से बच जाये। नाम में वास्तव में यह शक्ति है।

भगवान– क्या इससे आपका यह अभिप्राय है कि जिस समय हम को शारीरिक व मानसिक दुख का भान हो उस समय नाम के सहारे सुरत

को देह और मन से हटा दिया जाये तो उस समय दुख न होगा।

फ़कीर– हाँ, यही अभिप्राय है। प्रत्येक दिन का अनुभव यही बताता है। इसकी विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

यदि शब्द योग का साधन हो और इसके साथ-साथ साँसारिक या जीवन की कामनायें न हों तो कदापि कोई कष्ट नहीं होता। हाँ, जब तवज्जह (सुरत) देह में आयेगी तो कष्ट का भान होना जरूरी है।

भगवान– तब इससे यह समझा जाये कि जब तक तवज्जह देह में रहती है उस समय तक तो कष्ट या दर्द से बचाव न होता होगा क्योंकि उस दशा में जब कि शारीरिक अंगों में खराबी है, सुरत को कष्ट का भान होना जरूरी है।

फ़कीर– बिल्कुल ठीक है। ऐसी दशा में थोड़ा बहुत कष्ट का भान अवश्य होता है। हाँ, जब तवज्जह को शरीर से ऊँचा रखोगे , दुख का भान न होगा।

भगवान– आपने जो कुछ कहा है वह सत्य है और प्रतीत भी ऐसा ही होता है। इससे यह साबित हुआ कि जब तक तवज्जह शरीर में है या शरीर में आती रहती है तो शारीरिक कष्ट से कोई व्यक्ति बच नहीं सकता। यदि यह ठीक है तो फिर नाम लेने से क्या लाभ हुआ?

फ़कीर– सवाल का पहिला हिस्सा ठीक है। दूसरे का उत्तर यह है कि जिनको अपने अन्तर में प्रवेश करने का अभ्यास है वे अपनी तवज्जह को शरीर से निकाल सकते हैं और शारीरिक दृष्टि कोण से नहीं है। हाँ, यदि नाम जप के साथ-साथ दूसरी बातों का भी ध्यान रखा जावे जो नाम-जप वालों को आवश्यक हैं तो शारीरिक कष्ट कम होगा।

भगवान– वह अन्य बात क्या है?

फ़कीर– विषयों से परहेज, भोजन में समता, मानसिक ब्रह्मचर्य, पाचन शक्ति ठीक होना, शारीरिक शौच, पवित्रता आदि–आदि।

सुनो भगवान सिंह! मैं आप्त पुरुष हूँ। सिवाय सार अनुभव के मैं कोई बात हेर–फेर कर रोचक या भयानक पैराये में नहीं कहता। दाता दयाल महर्षि शिवब्रतलाल के बाहरी चोला अलोप होने पर तुमने मुझे खत लिखा। तुम्हारे दर्द भरे खत को पढ़कर मुझे दया आई। तुम्हें बुलाया। शक्ल सुरत देखी और साफ–साफ कह दिया कि तुम्हें जो अशान्ति की शिकायत है इसका कारण पाचन और स्वास्थ्य की खराबी है। इसका कोई सम्बन्ध रूहानियत से नहीं है और न इस अशान्ति या घबराहट के कारण तुम आवागवन में फँस जाओगे। आवागवन से छूटने का तरीका केवल अपने आपको या अपनी तवज्जह का सतगुरु, मालिक, अकाल पुरुष या राधास्वामी या कुछ और नाम रख लो, के साथ सम्बन्ध या प्रेम पैदा करना है। बात को समझो। शब्द जाल में न फँसो। आवागवन न योग से छूटना है न जप तप से, न संध्या तर्पण से, न सार ज्ञान से, बल्कि सार ज्ञान या राज हक़ को समझकर अपने - आपको अपने निज स्वरूप सतगुरु से जोड़े रखने से छूटेगा, क्योंकि जब तक मनुष्य की तवज्जह या सुरत किसी ऐसी वस्तु से प्रेम करती है जिसको वह अपने निज स्वरूप से ग़ैर या दूसरी समझता है अथवा वास्तव में वह गैर है उस समय तक वह मनुष्य बाहरमुखी है। जो लोग अन्तरी अभ्यास करते हैं, मगर उनका प्रेम या लगाव केवल दृश्यों , नज़ारों या सुरतों से, जो उनके अन्तर में प्रगट होती हैं, है तो वे भी आवागवन से नहीं छूट सकते।

यह दूसरी बात है कि अंतरीय वृति वाला व्यक्ति ऊपर के लोकों में चला जाये मगर आवागवन से नहीं छूट सकता। इसलिये संतों ने सतगुरु को शब्द रूप माना है। शब्द आकाश का गुण है और आकाश प्रकृति का सबसे ऊँचा मण्डल है। इस आकाश के समझने में भ्रम न हो। आकाश तत्व का अर्थ केवल इस स्थूल आकाश तक ही सीमित नहीं होता बल्कि सूक्ष्म व कारण माया में भी आकाश तत्व है। अतएव अनहद शब्द में भी अन्तर है। जब तक तवज्जह (सुरत) कारण माया के आकाश तत्व के शब्द में लय होने का अभ्यास न डालेगी पूर्ण आवागवन न जायेगा। यही कारण है कि राधास्वामी मत के अभ्यास में जो विभिन्न प्रकार के शब्द अन्तर में सुनाई देते हैं उनमें सार शब्द का महत्व है जो कारण माया के आकाश का शब्द है।

तुम बाह्य सतगुरु तक ही अपने आपको सीमित न रखो। अकाल पुरुष का, जो इस रचना का आधार है, इष्ट कायम करके प्रेम के भाव को बढ़ाते रहो। स्वयं वहाँ तक पहुँच हो जायेगी। आवागवन से छुटकारा पाने का यही सच्चा अभ्यास और तरीका है।

गुरु को मानुष जानते, ते नर कहिये अंध।
दुखी होय संसार में, आगे जम का फंद॥

भगवान– आपने बड़ी स्पष्टता से व्याख्या की है। वास्तव में मैं अब तक गुरु की ज़ात (स्वरूप) को देहधारी पुरुष तक सीमित रखता था और यही चाहता रहता था कि उससे वही बाहरी प्रेम

पहिले जैसा बना रहे मगर अब उसमें तथ्य नहीं पाता।

फ़कीर– प्रेम का भाव (मानव) देह से समान रूप से सदैव न रहता है न रह सकता है। विवेक की फुरना होने पर स्वाभाविकता से मनुष्य का विचार ऊँचे की ओर जाना चाहता है मगर आदतों का नियम पहिली जैसी हालत को स्थिर रखना चाहता है, परन्तु ऐसी हालत बनी रहना सम्भव नहीं है। अब इस प्रेम के भाव को अन्तर में ले जाकर खुद खेलने का अवसर दो। एक ही दशा में अटके न रहो।

भगवान– शास्त्रों में बताया गया है कि मृत्यु के बाद मनुष्य पितृ-लोक, किन्नरलोक, गंधर्वलोक, स्वर्ग - नर्क आदि में जाता है। इस विषय में आपका क्या विचार है?

फ़कीर– पितृलोक, किन्नरलोक, गंधर्वलोक, स्वर्ग और नरक आदि अवश्य हैं। मगर यह क्या है, इसकी समझ लोगों को नहीं है। सुनो!

पितृलोक क्या है? वह पुरुखा, जिनके रक्त और वीर्य से तुम्हारी देह बनी है, की प्रकृति, विचार और संस्कारों का असर या अंश तुम्हारे स्थूल और सूक्ष्म शरीर के अन्दर मौजूद है या तुम्हारे शरीर की प्रकृति से मिलती, इसलिये मनुष्य की तवज्जह बाहरी ख्यालात और शारीरिक भान को भूल कर अन्तर में एकाग्र होती है या दिमाग़ के अन्दर उलट कर दाखिल होती है, तो वह विचार या भाव, जो पुरुखों में मौजूद थे और जिनके प्रभाव मनुष्य के दिमाग या सूक्ष्म शरीर में मौजूद हैं, दूरबीन के सिद्धान्त के अनुसार बड़े मालूम होते हैं या ख्याली रूप धारण कर लेते हैं या रूप धारण किये प्रतीत होते हैं। वे पुरुष किसी न किसी शक्ल में नज़र आते हैं। यह नहीं कि वह मिलते हैं। हाँ! जो भेद से परिचित

नहीं है वह इन दृश्यों को सच्चा समझ लेते हैं।

भगवान– क्षमा कीजिये। इससे तो यह साबित हुआ कि पितृलोक आदि केवल विचार या संस्कार की अस्थायी या आरजी उपज है। उनकी कोई असलियत रचना में नहीं है। उनका दृष्टिगोचर होना केवल विचार और संस्कारों से सम्बन्ध रखता है जो हमें सदैव विरासत (उत्तराधिकार) में प्राप्त होते हैं।

फ़कीर– विषय बहुत गंभीर है। ध्यान से सुनो। बाहर भी पितृलोक आदि हैं क्योंकि जिस प्रकार की प्रकृति तुम्हारे पुरुखों में थी वह बाहर से ही तो उन्होंने ली थी और वह प्रकृति अब भी बाहर मौजूद हैं। जब मनुष्य अपने अन्दर उस स्थान पर तवज्जह को ले जाता है तो उसका सम्बन्ध रेडियो के उसूल के अनुसार धारों के ज़रिये बाहरी मंडल से हो जाता है और मनुष्य के विचार या भावों का प्रभाव भी उन मंडलों तक जाता है। मनुष्य यहाँ अपने स्थान पर रहता हुआ अपने दिमाग़ में एकाग्र होकर दूरदराज़ देशों की सैर या परिचय प्राप्त कर सकता है बशर्ते कि वह एकाग्र और पक्के विचार वाला हो।

भगवान– इसका कोई प्रमाण?

फ़कीर– सत्संग में ऐसे सवाल करना मना है क्योंकि इनसे चमत्कार में फंसाव बढ़ता है और मनुष्य का असली ध्येय जो आवागवन से छुटकारा पाने का है, गुम हो जाता है। खैर! मैं एक घटना सुनाता हूँ।

जब मैं होशियारपुर में मकान बनवा रहा था, मेरे मित्र पं. पुरुषोत्तमदास मेरे पास ठहरे हुये थे। एक रात मेह (बारिश)पड़ रहा

था। मैं चलता-चलता उनके स्थान के सामने फिसल कर गिर पड़ा। उनकी पुत्री ने उस समय मेरी सहायता की। दिल में सहानुभूति पैदा हुई। उसने मेरे तमाम कपड़े साफ़ किये, गर्म पानी करके साबुन से मेरे हाथ पैर धोये। उस लड़की का पति पाँच वर्ष से लापता था और वह बेचारी बेहद दुखी रहती थी। लड़की के हित, प्रेम और विश्वास के कारण मेरे दिल में दया आई और उसके पति के पता लगाने का ख्याल पैदा हुआ। पुरुषोत्तमदास से उस लड़के की फोटो मंगाई और सुबह उस फोटो को ध्यान से देखकर और लड़के की तलाश का ख्याल लेकर मैं समाधी में चला गया। मैंने उसको कलकत्ते में पीले रंग के मकान के अन्दर देखा। समाधि से उठकर मैंने पुरुषोत्तमदास से कहा कि लड़का कलकत्ते में मौजूद है। वह स्वयं आयेगा। पुरुषोत्तमदास इन बातों पर यक़ीन नहीं रखता था लेकिन दिल में मेरी इज्ज़त करता था। इसलिये खामोश रहा। तीन माह के बाद लड़का स्वयं आ गया। अब वह फौज में नौकर है। आने पर उसने स्वीकार किया कि वह उन दिनों में पीले मकान में ठहरा हुआ था। यह प्रमाण है लेकिन मैं सबके लिये ऐसा करना चाहूँ तो नहीं हो सकता। यह ख्याल और तबीयत के रुझान की बात है। मेरा विचार ऐसी बातों से दूर रहना चाहता है। कभी-कभी किसी-किसी के लिये इच्छा भी की लेकिन तबीयत ने न माना। मगर बात यह बिल्कुल सच है। इसी तरह इंसान अपने दिमाग में एकाग्र होकर जिस लोक में जाना चाहता है जा सकता है। इसका अर्थ कदापि यह नहीं कि वह अपना शरीर छोड़ कर जाता है। बल्कि रेडियो की धार (current) के सिद्धान्त के अनुसार वह वहाँ के हालात और वाक़आत को देख सकता है। लेकिन ख्याल रहे इस तबीयत का आदमी अपने

असली ध्येय से गिर जाता है। चमत्कारों में फंसाव की आदत उचित नहीं।

भगवान- विचार भी वास्तव में अपना अस्तित्व रखता है। विचार में प्रबल शक्ति है। वह सामान्य वस्तु नहीं है जैसा कि मनुष्य समझता है। विचार से कोई दृश्य बनाना मामूली बात नहीं है। इसी प्रकार शिव लोक, विष्णु लोक आदि-आदि भी रचना के लोक हैं। वहाँ तेजोमय या प्रकाश रूप दुनिया बसती है। यदि किसी व्यक्ति में इस प्रकार की रुचि या आसक्ति है तो वह एकाग्रता का अभ्यास हो जाने पर इस शरीर में बैठा हुआ दृश्य देख सकता है।

भगवान- क्या वहाँ के अनुभव सब के एक समान होंगे?

फ़क़ीर- नहीं, वह दृश्य जो मनुष्य देखता है उसमें उसकी अपनी प्रकृति का असर भी शामिल रहता है। मसलन् महात्मा बुद्ध को जो ज्ञान हुआ उसकी सूरत दूसरी थी और अन्य महात्माओं की दूसरी। चूंकि लोगों की प्रकृति में भिन्नता है इसलिये हर एक व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुसार उसी प्रकृति वाले लोकों का दृश्य देख सकता है अथवा ख्याली तौर पर वहाँ जा सकता है। इसलिये यह जो कुछ भी है प्राकृतिक खेल है। जो व्यक्ति इस ओर तवज्जह देगा, निज स्वरूप को प्राप्त न कर सकेगा। इसलिये सन्तों ने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया है। यह हालतें अभ्यास के दिनों में स्वयं भी पैदा होती रहती हैं और इनका प्राकट्य प्रत्येक अभ्यासी को अपनी प्रकृति के अनुसार होता रहता है। कुदरत की तमाम शक्तियाँ आँशिक रूप में मनुष्य देह में मौजूद हैं। इसी कारण

से कहा गया है- पिंडे सो ब्रह्माण्डे। जब तवज्जह अपने अन्दर उन स्थानों पर एकाग्र होती है तो उसका सम्बन्ध उन लोकों से, जो उस प्रकृति के बाहर में मौजूद है क़ायम हो जाता है। अफ़सोस है कि शब्दों का भंडार काफी नहीं मिल रहा है और बात बड़ी बारीक है इसलिये अपने भाव या अनुभव को ज्यों का त्यों प्रकट करने से मजबूर हूँ। फिर भी विचार से समझने का प्रयत्न करो।

भगवान- आपका अभिप्राय यह हुआ कि ब्रह्माण्ड में जो विस्तृत रूप में है वह पिंड में छोटे रूप में है और जो व्यक्ति पिंड में अपनी तवज्जह को किसी स्थान पर एकाग्र करता है वह जानकर या अनजाने तौर पर धारों के ज़रिये इस स्थान की प्रकृति से, जो बाहर ब्रह्माण्ड में है सम्बन्ध जोड़ सकता है।

फ़कीर- बिल्कुल ठीक है।

भगवान- फिर यह शिव लोक विष्णु लोक आदि क्या हैं?

फ़कीर- प्रगट करना कठिन हो रहा है, क्योंकि हिन्दुओं को ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि शब्दों द्वारा विशेष-विशेष प्रकार के ख्यालात और संस्कार मिले हुये हैं, इसलिये वह अपने संस्कारों के कारण एकाग्रता की दशा में अपने ही अन्दर वैसे ही रंग- रूप आदि देखते हैं। इस्लाम या अन्य धर्मावलम्बियों को भिन्न-भिन्न प्रकार के संस्कार या ख्यालात बाहर से मिले हुये हैं इसलिये वह उनके अनुसार अन्तरीय दृश्य देखते हैं। प्रत्येक धर्म में इन दृश्यों के भासमान होने या

प्राकृतिक प्रकाश आदि के नाम भिन्न-भिन्न रखे हुये हैं और उनका वर्णन भी भिन्न-भिन्न तरीकों से किया गया है। इसलिये प्रत्येक अभ्यासी अपने-अपने संस्कारों या प्रकृति के अनुसार दृश्य देखा करता है। तुम सिद्धान्त को समझ लो। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सब के सब कुदरत की भिन्न-भिन्न शक्तियों के नाम रखे हुये हैं और अलंकार रूप में जो-जो शब्द या रूप उनको प्रकट करने के लिये वर्णन किये गये हैं उनके अनुसार वे मनुष्य को अपने अन्दर नज़र आते हैं। मैं कह चुका हूँ कि यह सब प्रकृति का खेल है और साथ ही उन संस्कारों का नतीजा है जो मनुष्य को शब्द, विचार और स्पर्श (Touch) द्वारा प्राप्त होते हैं।

भगवान- शायद आपका यह अभिप्राय है कि अभ्यास में जो दृश्य या रंग रूप आदि दृष्टिगोचर होते हैं, वह सब बाह्य प्रभावों का परिणाम होते हैं। साथ ही उनका दृष्टिगोचर होना या भासमान होना प्रत्येक व्यक्ति की अपनी प्रकृति के अनुसार होता है। अर्थात् बाह्य प्रभाव और मनुष्य की अपनी प्रकृति इन दृश्यों में असर रखती है तथा बाह्य प्रभाव भी प्रकृति में बाहर से आते हैं जो इस ब्रह्माण्ड में पहिले से विद्यमान हैं।

फ़कीर- बिल्कुल ठीक है। अब यदि और कुछ पूछना है तो पूछ सकते हो।

भगवान- आपकी दया है। इस समय और कुछ पूछना नहीं है। विशेष फिर कष्ट दूँगा।

तृतीय प्रसंग

फिरोजपुर सिटी-मार्च,1947

प्यारे भगवान सिंह !

तुम्हार दर्द भरा पत्र मिला। पढ़ा।

कौन है जो दर्द से ख़ाली, जहाँ में ऐ अजीज़।
दर्द से खाली वही है, जिसको है सच्ची तमीज़ ॥१ सार अनुभव
तमीज़ यह आती नहीं हरगिज़ ऐ भगवान सिंह।
जब तलक हासिल न हो, यकसुई मेरे अजीज़ ॥
मुद्दआये जिन्दगी है, यकसुई बस यकसुई।
यकसुई जब तक न आये, इंसान है वह बेतमीज़ ॥ २ अज्ञानी

तुमने लिखा कि आज शिवरात्रि को जो दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी का जन्म दिन है, उनकी याद मना रहा हूँ,मगर साथ ही आवागवन के वहम से दुखी हो रहा हूँ। तुमने मुझसे इस विषय पर अपने विचार प्रकट करने को लिखा है।

प्यारे भाई ! यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि मैं वह व्यक्ति हूँ जो स्वार्थ, मान, यश और नाम के ख्याल से बिल्कुल आज़ाद हूँ। वह

बात करता हूँ कि जो अमल से अनुभव में आ चुकी है। अतः इससे पहिले कि मैं आवागवन के विषय में अपने विचार प्रकट करूँ, मैं अपने दिल से यह सवाल करता हूँ कि मेरा आवागवन चला गया है या नहीं।

ऐ अजीज़ सुनो ! मेरे दिल से आवागवन का संशय दूर हो गया है। मुझे यह ख्याल बिल्कुल नहीं सताता कि जन्म - मरण होता है या नहीं। यदि जन्म -मरण होता है तो वह किस बला का नाम है। ऐसा कैसे हुआ? दाता दयाल की संगत और उनके दिये हुये संस्कार से। तुम शायद मेरी बात भली भाँति न समझ सको, इसलिये सुनो। शास्त्र कहते हैं-

ध्यान मूलम् गुरुर्मूत्ति, पूजा मूलम् गुरु पदम।
मंत्र मूलम् गुरुर्वाक्यम्, मोक्ष मूलम् गुरु कृपा ॥

याद रखो ! आवागवन से छुटकारा केवल गुरु कृपा से होता है।

वह गुरु कृपा क्या है? सतपुरुष रा. स्वा. दयाल की वाणी सुनो-

गुरु ने दीन्हा भेद अगम का। सुरत चली तजि देश भरम का ॥

(पूरा शब्द भूमिका में दर्ज है। एक बार फिर पढ़ो)

मैं तुम्हारा ध्यान इस शब्द के सारांश की ओर सूक्ष्म रूप से ले जाता हूँ।

सतगुरु ने दया की भेद किया। फिर क्या हुआ? भेद मिलने पर स्वर्ग-नर्क, जन्म- मरण का संशय दूर हो गया और सच्ची भक्ति का अधिकारी हो गया। अब समझो कि गुरु कृपा क्या है। बाहरी पूर्ण सतगुरु ने दया करके नाम प्रदान दिया। दूसरे शब्दों में एकाग्रता का तरीका बताया। इस एकाग्रता के तरीके का अर्थ है सम दम का

अभ्यास। जब यकसूई या नाम या सम दम का अभ्यास पूरा हो गया तो बाहरी सतपुरुष के वचन द्वारा राज़ (सार ज्ञान) की समझ आ गई और मरण का संशय जाता रहा।

मैं और अधिक विस्तार से काम लेता हूँ ताकि किसी तरह बात समझ में आ जाये। इस एकाग्रता की पाँच हालतें या अवस्थायें हैं–

प्रथम– तुम्हारी वह अवस्था जहाँ तुम्हारे मन में हज़ारों प्रकार के विचार पैदा होते रहते हैं।

द्वितीय– तुम्हारी वह अवस्था जहाँ तुम्हारा मन सिर्फ एक प्रकार की विचार धारा को इष्टदेव बनाकर उससे प्रेम करता है।

तृतीय– तुम्हारी वह अवस्था जहाँ तुम्हारा मन अपने इष्टदेव में लय होकर अपने – आपको भूलने लगता है।

चतुर्थ– तुम्हारी वह अवस्था जहाँ तुम्हारा मन अपने आप में लय होकर व्यक्तिगत रूप से अपने – आप को भी भूल जाता है।

पंचम– तुम्हारी वह अवस्था जहाँ तुम्हारा मन अपने – आपको खोकर ऐसी दशा प्रकट करता है जहाँ मन तो नहीं मगर तुम हो।

इन अवस्थाओं के प्रगट करने के लिये संतों, फ़कीरों और धर्म-संस्थापकों ने भिन्न-भिन्न नाम रखते हैं। जैसे कि हिन्दुओं में एक मंत्र आता है जिसमें इन अवस्थाओं का वर्णन दूसरे ढंग से मौजूद है।

ओ३म् भूः ओ३म् भुवः, ओ३म् स्वः, ओ३म् महः, ओ३म् जनः ओ३म् तपः, ओ३म् सत्यम्।

इसी प्रकार इस्लाम धर्म में सूफियों ने जबूरत, मलकूत, नासूत, हूत, हूतुलहूत इत्यादि नाम रखे हैं और संतों ने सहस्रदल कंवल,

त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, भंवर गुफ़ा आदि-आदि। कई महापुरुषों ने इस एकाग्रता या नाम की अवस्थाओं को समझाने के लिये बहुत सी श्रेणियाँ (चक्र) नियत की हैं विशेष व्याख्या व्यर्थ है केवल सारांश को समझ लो।

संतों की वाणी में जिन श्रेणियों (चक्रों) का उल्लेख आता है वे वास्तव में मनुष्य के बोध या भावों की रोचक ढंग पर व्याख्या है। पिंडे सो ब्रह्माण्डे। ब्रह्माण्ड में जो शक्तियाँ काम कर रही हैं वही शक्तियाँ छोटे पैमाने पर पिंड अर्थात् मनुष्य देह में भी विद्यमान हैं। हाँ! वाणी के शब्द रोचकता लिये हुये हैं और वर्णन शैली भक्ति और प्रेम के संस्कारों से भरी हुई है। वह वाणी उस समय की परिस्थितियों के अनुसार ठीक और अनुकूल थी।

तुम या अन्य व्यक्ति कह सकते हो कि जिनको इन श्रेणियों से गुज़रने का अवसर नहीं मिला, अतः वे लोग वाणी की सच्चाई में शक शुभा कर सकते हैं। ऐसे ही विचार से प्रभावित एक सज्जन ने मुझ से कहा भी था कि राधा स्वामी मत सब्ज़-बाग दिखाता है। जिनको इन स्थानों का अनुभव नहीं हुआ है उनका कहना ठीक है। ऐसे ही पुरुषों के भ्रमों को मिटाने के लिये मैंने सत्संग का काम प्रारम्भ किया। वास्तव में बात यह है कि मनुष्य का स्वभाव या उसका मन रसिक है। जब वह कथन के अनुसार आनन्द और मस्ती के दृश्य नहीं देख पाता तो उदास होता और भ्रम में फंस जाता है। इस त्रुटि या कमी को दूर करने के लिये संतमत या राधास्वामी मत में जीवित पूर्ण पुरुष की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। वह पूर्ण पुरुष सारभेद का ज्ञाता हो, सच्चाई प्रिय हो, जीवों के भ्रमों को दूर करने वाला हो, निष्काम और निःस्वार्थ हो। मैंने

यह मुसीबत और दु:ख इसी कारण से अपने सिर लिया है कि जो भाई मुद्दत से भटकते फिर रहे हैं इस भेद को समझ जायें।

इस वर्ष शिवरात्रि पर मैं लाहौर गया। मेरी धर्मपत्नी ने पूछा कि अब आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि आपके भ्रम नाश हो गये हैं तब इस बुढ़ापे में बाहर जाने से क्या स्वार्थ या अभिप्राय? मैंने उत्तर दिया कि चूंकि तुम बूढ़ी हो गई हो और सत्संगियों की सेवा करने के अयोग्य हो, विवश होकर दातादयाल का स्मृति दिवस (यादगार) मनाने लाहौर जाना पड़ता है ताकि तुमको कष्ट न हो। उन्होंने फिर कहा कि आप अकेले भी यह दिन मना सकते हैं। जब आपको कोई ग़रज नहीं, और अन्य साधुओं, महात्माओं अथवा गुरुओं की भाँति भेंट वगैरह नहीं लेते तब इस जनून से क्या लाभ? मैं हँसा। बोला ऐ सच्ची स्त्री! मैं तुमको गुरु का रूप समझ कर प्रणाम करता हूँ। तूने इस दिवानगी में मेरा साथ दिया है। मेरे कारण तुमको तथा माता पिता और भाइयों को कष्ट पहुँचा है। वास्तव में मेरे बस की कोई बात नहीं है। ऐसा होना ही था। अब मैं दाता दयाल के शुद्ध स्वरूप को अपने से पृथक भान नहीं करता। शिवरात्रि का जन्मदिन भी सोशल या सामाजिक कार्य है। इसके सहारे अपने जैसे दीवानों को समझाने का ख्याल रहता है कि 'जिस वस्तु की तलाश में तुम भटकते फिर रहे हो वह तुम्हारे पास है।'

ऐ भगवान सिंह! इन स्थानों से गुज़र जाना और सार भेद को प्राप्त करना कोई कठिन काम नहीं है। यदि कमी है तो यह कि मनुष्य के हृदय में सांसारिक वासनायें भरी हुई हैं। वास्तव में सार भेद के जानने की अभिलाषा किसी बिरले ही को है, वर्ना किसी को कोई कष्ट है व किसी को कोई दुख है। प्रत्येक मनुष्य परमार्थ का सहारा लेकर क्षणिक दु:खों

से छुटकारा पाने का इच्छुक है। क्या मैं उनसे बरी हूँ या तुम बरी हो। कोई हो– साधु, गृहस्थी, ज्ञानी, ध्यानी, त्यागी, वैरागी अथवा संत, इस सृष्टि या जाग्रत अवस्था में कोई भी दुखों से रहित नहीं है। कबीर की वाणी है–

तन धर सुखिया कोइ न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।

(गत शब्द दूसरे प्रसंग में दिया गया है।)

इस मन के जीतने का दूसरा अर्थ दिली एकाग्रता का अभ्यास है। सुमिरन, ध्यान और भजन इसी एकाग्रता को प्राप्त करने के ढंग या तरीके हैं। इसके सिवा मेरी समझ में दूसरा अन्य मार्ग सुखी रहने का नही है। तुमको आवागवन का डर है। उसका भी यही इलाज है। यह इलाज तुम अपने अन्तर में स्वयं कर सकते हो। उसका ढंग केवल यह है कि अपने सतगुरु (जो कि तुम्हारा अपना स्वरूप है) से प्रेम पैदा करो। यह प्रेम अन्तर में रहे। ज़ाहिरदारी या दिखावे की आवश्यकता नहीं। दाता दयाल ने एक शब्द लिखा है–

यह मन समझन योग साधो, यह मन समझन योग।
मन ही ज्ञान और मन ही ध्यान है, मन ही मोक्ष और भोग।
मन में वेद को पढ़ते ब्रह्मा, शंकर करते योग॥ यह मन०
मन ही अन्दर सृष्टि व्यापी, मन ही में है रोग। यह मन०
मन गोविन्द मन गोरख रूपा, मन ही योग वियोग॥ यह मन०
मन ही पानी मन ही अग्नि है, मन ही आनन्द सोग ॥ यह मन०
मन ही गुरु है मन ही चेला, मन ही ब्रह्म संयोग॥ यह मन०
मन ही का व्यौहार जगत में, नाहीं समझें लोग॥ यह मन०

रोचक शिक्षा जहाँ लोगों को पंथ में शामिल करती है और दायरे (मण्डल) को बढ़ाती है, वहाँ लोगों को स्वतन्त्र होना कठिन बना देती है। इसी प्रकार यथार्थ शिक्षा जहाँ मनुष्य को मुक्त करती है, वहाँ लोगों का पंथ में प्रवेश करना बंद कर देती है। यदि सच्चाई बयान करता हूँ तब कठिनाई, यदि नहीं करता हूँ और पर्देदारी से काम लेता हूँ तब भी कठिनाई। अत: मैं व्यक्तिगत सत्संग का पक्षपाती हूँ। तुम्हारे पत्र को पढ़ कर दिल में दर्द पैदा हुआ, अत: साफ-साफ वर्णन कर रहा हूँ।

दाता दयाल के चोला छोड़ने पर तुमने मुझे पत्र लिखा। मैंने तुम्हें बुलाया और साफ़-साफ़ कह दिया कि तुम्हारी अशान्ति का कारण वाल्यावस्था में वीर्य का अधिकता से नष्ट होना और पाचनशक्ति का खराब होना है।

वस्तु कहीं ढूँढें कहीं, केहि विधि आवे हाथ।
कहें कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ॥

इस बार मैं लाहौर गया था। दो सत्संगी जिनका सम्बन्ध व्यास सत्संग से था और बहुत दूर से आये थे, मिले। उनमें तड़प बहुत थी, अभ्यास भी खूब करते थे मगर प्रकाश या नूर प्रगट नहीं होता था। इस विषय में पूछताछ की। मैंने कहा कि आपको अपने महाराज साहब की बिना आज्ञा के यह प्रश्न नहीं करना चाहिये था। खैर! मैंने उनको बताया कि सच्ची बात यह है कि तुम्हारे अन्दर प्रकाश के प्रकट होने का कारण वीर्य का अधिकता से नष्ट होना है। इसी प्रकार ऐ भगवान सिंह! तू वाणी जाल में न फंस। मैं तुम्हें सच कहता हूँ कि मैं सारभेद (सार ज्ञान) का ज्ञाता हूँ और इस संसार में दु:खी प्राणियों के लिये, चाहे वह शारीरिक रूप से दुखी हों, चाहे मानसिक या आध्यात्मिक तौर से,

संदेश लाया हूँ। वह संदेश यह है- (1) मानसिक ब्रह्मचर्य (2) मन से किसी का बुरा न चाहना (3) सत पुरुषों के सत्संग द्वारा अज्ञान का दूर करना। दाता दयाल ने कहा था-

तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेसा।
दु:खी जीव को अंग लगाकर, लेजा गुरु के देशा॥
तीन ताप से जीव दुखी हैं, अबल निबल अज्ञानी।
तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी॥

लोग वाणी को पढ़ते हैं और शब्द जाल में फँस जाते हैं हालाँकि राधा स्वामी दयाल ने साफ़ कहा है-

सन्त बिना कोई भेद जाने, पर वे तोहि कहें अलग में।

समय बदल गया है। संत मत की शिक्षा को विश्व व्यापी होना है अत: अब गुप्त रीति (पर्दादारी) की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि हमारी वर्तमान पोलीटिकल बेचैनी और बदअमनी का कारण भी मानसिक व्यभिचार हैं। यदि जीवन रहा तो इस विषय पर कभी प्रकाश डालूंगा।

इस समय तुम्हारा दर्द भरा पत्र सामने है। आवागवन के विषय पर ही अपना अनुभव प्रकट करना उचित समझता हूँ। आवागवन से बचना केवल यह है कि मनुष्य अपने शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भान व बोध छोड़ने पर आरूढ़ हो अर्थात् उसका ऐसा स्वभाव बन जाये कि जब चाहे अपने सम्पूर्ण विचारों को छोड़ सके या भूल जावें। तब वह अपने आप में या अपने हैपने में आ जाता है। इस बेख्याली या निर्विचार की दशा में अपने आधार या निज स्वरूप की ओर खिंचता रहे। यही

वास्तविक और सच्ची भक्ति है। इसका संकेत स्वामी जी ने इस शब्द में किया है–

गुरु ने दीना अब भेद अगम का।
सुरत चली तजि देश भरम का॥

मगर यह अवस्था उस समय तक प्राप्त न होगी जब तक कि मनुष्य के धार्मिक और सांसारिक तमाम सम्बन्ध तथा वासनायें दिल से दूर न हो जायें या वह मौज आधीन न कर दिये जायें।

थोड़ा ध्यान दो कि मैं क्या कह रहा हूँ। जब तक शरीर है और मन हैय ाय हज ीवनह ैय हर्ि नतान्तअ सम्भवह ैि कर्ि सवायअ भ्यास (साधन) या प्रेम में लय होने के समय के शेष समय में मन की फुरना न हो। जिस प्रकार की प्रकृति मनुष्य की है, वह शरीर में रहता हुआ उस प्रकार के भावों से नहीं बच सकता। अतः सहज उपाय यह है कि सुमिरन, ध्यान और भजन की आदत डाली जाये। सुमिरन का असली अर्थ है याद। याद किसकी? उस अवस्था की या उस मालिक की जिसमें विषया या विषय विकार नहीं है।

तन मन वाको दीजिये, जामें विषया नाहिं।

उसका दूसरा नाम अकालपुरुष, सतपुरुष या अनामी पुरुष है। विषय विकार यदि नहीं है तो तुम्हारी उस अवस्था में नहीं है जो मन और बुद्धि से ऊँची है। अतः मैं निज अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि जब तक मनुष्य की स्थिति है इसका एक मात्र उपाय भक्ति है। भक्ति यह है कि अपनी तवज्जह (सुरत) के मालिक या निज स्वरूप को, जो अरूप, अगम और अनामी है, इष्ट बनाओ। जिस प्रकार पनिहारी सिर

पर पानी का घड़ा रखे हुए चलती जाती है, हिलती–डोलती है, बातचीत करती है लेकिन तवज्जह (सुरत) घड़े की ओर रहती है, इसी प्रकार अपनी तवज्जह को सांसारिक कार–व्यवहार करते हुये सत पुरुष राधा स्वामी दयाल (मूल तत्व) से जोड़े रखो। मुझे अब आवागवन का संशय नहीं सताता क्योंकि मेरा इष्ट दाता दयाल की ज़ात (स्वरूप) है। मैंने मालिक को या निज स्वरूप को शरीर बाह्य समझकर प्रेम किया है और इसी की दया से अब समझ आ गई है कि वह मेरी अपनी ज़ात (निज स्वरूप) है। पहिले भाव बाहर काम करता था अब अन्तर में करता है और खुशी आनन्द और मस्ती का रसास्वादन करता हूँ। यदि तुमने भी प्रेम और भक्ति की, जो कि तवज्जह (सुरत) से की जाती है, आदत डाल लो तो तुममें भी खुशी, आनन्द और मस्ती पैदा होगी। इस संसार में काल और कर्म का कर्ज़ा प्रत्येक को देना पड़ता है मगर भक्त और प्रेमी जन इनकी चिन्ता नहीं करते। उनका दृढ़ प्रेम काल और कर्म के प्रभाव का असर उन पर नहीं होने देता।

तुम सम्भवतः प्रश्न करो कि काल और कर्म के कर्ज़े से क्या अभिप्राय है। मेरी समझ में काल नाम है समय का और समय परिवर्तन शील परिवर्तन (तब्दीली) क्रम बराबर जारी रहता है। यह सारा संसार लोक लोकांतर आदि –आदि सब के सब परिवर्तन के नियम के आधीन गति में हैं। यह सब का सब कालचक्र कहलाता है। इस चक्र के चलते रहने या परिवर्तन होते रहने से मनुष्य की सुरत (आत्मा) को दुःख–सुख, खुशी– ग़मी के प्रभावों का भान होता रहता है। यही अवस्थायें आवागवन कहलाती हैं। यदि मनुष्य अपनी तवज्जह को अकाल पुरुष से जोड़े रखे या अकाल पुरुष का इष्ट धारण कर ले तो इस काल चक्र

के प्रभाव से बच सकता है। दाता दयाल ने एक शब्द जो मेरे नाम लिखा था उसे तुम्हें सुनाता हूँ और अपनी बारी पर तुम्हारे नाम लिखता हूँ–

शब्द

काल चक्र इक सहज हिंडोला, झूला अचरज न्यारा।
सब कोई झूले झूला चढ़कर, काल झुलावन हारा॥

चन्द्र सूरज दोऊ गगन में झूले, झूलै नौ लख तारे।
जीव जन्तु पृथ्वी में झूले, नर पशु सकल विचारे॥

राजा झूला रानी झूली, और प्रजा समुदाई।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर झूले, झूले सब दुनियाई॥

लक्ष्मी झूली दुर्गा झूली, गायत्री महारानी।
देवा झूले देवी झूली,जल थल अगनी पानी॥

काल भी झूला अपने झूले सृष्टि प्रलय कर प्यारे।
वह भी बचा न चक्र से अपने, झूला झूले सारे॥

चढ़ी पैंग तब ऊँचे आये, उतरी नीचे ठहरे।
कभी मिले तो जगमग देखी, बिछुड़ के हो गये न्यारे॥

एक दशा में नित जो बरते, कोई नज़र न आया।
पीर पैग़म्बर कुतुब औलिया, ऋषि मुनि बच नहिं पाया॥

पानी हुआ भाप की सुरत, धाया गिरि कैलाशा।
बर्फ बना धारा बह निकली, नीचे किया निवासा॥

नीचे भी रहने नहीं पाया, फिर ऊँचे की आशा।
हम तो देखें खुली दृष्टि से, अचरज अजब तमाशा॥

लकड़ा जलकर कोयला हो गई,कोयला राख अरु माटी।

माटी-माटी में नहिं ठहरी, बनी काठ और लाठी॥

बिष्ठा अन्न-अन्न भया बिष्ठा, सोई सब कोई खावे।
यह प्रपंच है अद्‌भुत न्यारा, विरला कोई लख पावे॥

जागृत स्वप्न सुषुप्ति लीला, कभी ऐसी कभी वैसी।
यह सब काल बली की माया, कभी जैसी कभी तैसी॥

पंडित कभी अनाड़ी होते, कभी ज्ञानी अज्ञानी।
कभी जड़ मिलजुल चेतन ठहरे, कभी चेतन जड़ जानी॥

एक दशा में कोई न बरते, कभी मीठा कभी कडुवा।
कभी थका कभी सोया लोटा, काल चक्र अति चौड़ा॥

झूले की है विचित्र कहानी, कथा वार्ता न्यारी।
नर को हम समझावन आये, सुने न बात हमारी॥

दुख सुख सुख दुख द्वन्द पसारा, द्वन्द से प्यार बढ़ाया।
द्वन्द भाव ले जगत रचाया, द्वन्द के फांस फसाया॥

मन बुद्धि और चित अहंकारा, सो झूले की रसरी।
दुलड़ तिलड़ चौलड़ बन आई, जीव निबल को जकड़ी॥

जकड़े माया के फंदे में, रोये और चिल्लाये।
शोर मचाये बहु चिल्लाये, छूटन विधि नहीं पाये॥

तब दयाल को दाया लागी, संत रूप धरि आया।
राधास्वामी अचल मुक़ामी, शिव दयाल कहलाया॥

नर शरीर में प्रगटा आकर, जीवन बहुत चिताया।
जो कोई जीव शरण में आया, अपनाकर अपनाया॥

सुन भगवान् यह गुरु उपदेशा, मैं भी तुझे सुनाऊँ।
बात जो मेरी मन से माने, इस झूले से तुझे बचाऊँ॥

खेल खिलाऊँ सुगम सुहेला, सुरति शब्द मत गाऊँ।
काल हिड़ोंले से तू बाचे, विधि विचित्र समझाऊँ॥

कर सत्संग विवेक से गुरु का, गुरु दयाल हितकारी।
साधू बनकर साध ले युक्ति, जा झूले के पारी॥

नर शरीर सुर दुर्लभ पाया, सत संगत में आया।
तेरा दाव पड़ा है पूरा, सोच समझ तज माया॥

अबके चूके मौज न ऐसी, त्याग काल की आसा।
आज का साधन आज ही करले, कल को होगा उदासा॥

बार-बार नहीं अवसर प्रानी, काल महा दुखदाई।
जो कोई करे काल की आसा, सो पाछे पछताई॥

राधास्वामी दयाल शिव, तेरे कारन थे आये।
शीश चरन में उनके झुकाकर, अपना काज बनाये॥

राधा स्वामी राधा स्वामी, राधा स्वामी गाना।
मन वचन कर्म से भक्ति कमाना, झूले बाहर जाना॥

तुम्हारा या मेरे जैसे दूसरे भाइयों का जो पतित हैं एक मात्र इलाज भक्ति मार्ग है-

मैं पतित ठहरा तभी, तूभी पतित पावन बना।
डूबा दुख सागर में मैं, तब तू तरन तारन बना॥

प्यारे भगवानसिंह! यदि तुमको प्रकाश नज़र नहीं आता तो हर्ज

क्या है। हमारे जैसे पतित लोगों के लिये प्रेमं और भक्ति का मार्ग है और वह प्रेम या भक्ति सतगुरु की ज़ात (स्वरूप) से हो जो हमारे अपने अन्दर है बल्कि जिसमें हम रहते हैं।

तुम वाणी को पढ़ते हो। वह बिल्कुल सच है मगर उसकी समझ नहीं है। यह भेद किसी सच्चे गुरु मुख से मिलेगा। उन चक्रों या स्थानों के दृश्य और प्रकाश किसी ऐसे पुरुष के हिस्से में आ सकते हैं या उसके अन्दर प्रगट होते हैं जिनका मानसिक ब्रह्मचर्य क़ायम हो और सांसारिकव ासनाओंम ेंक मअ ासक्तिह ो ाह ाँ,श ाब्दस बकोि मल सकता है बशर्तें कि मनुष्य में प्रेम और भक्ति के भाव हों। सुनो, तुम्हें दो घटनायें सुनाता हूँ-

मैं फ़रीद कोट में स्टेशन मास्टर था। वहाँ एक दिन श्री मोहन राज मिलने आये जो गुड्स क्लर्क थे। अभ्यास के विषय मैं बात-चीत होने लगी। उनके साथ उनके मित्र का लड़का था जो मैट्रिक की परीक्षा देने के लिये उनके पास ठहरा हुआ था। वह हमारी बातें ध्यान पूर्वक सुनता रहा। घर जाकर साधन में बैठ गया। अन्तर में ज्योति प्रगट हुई और आरती होने लगी। जब उसका उत्थान हुआ, वह प्रसन्न था। उसने अपनी दशा का वर्णन बाबू मोहन राज से किया। उन्होंने मुझसे कहा। मैंने लड़के को बुलाया, देखा और समझाया कि अभी तुम अभ्यास न करो।

दूसरी घटना पं० वलीराम साहब हकीम हाज़िक फिरोजपुर के पुत्र विद्यासागर की है। वह एक बार मेरे मकान पर आया। मैं समाधी में था। वह चला गया और घर जाकर वह भी अभ्यास में बैठ गया। अन्तर

में रोशनी, तारे और चन्द्रमा आदि प्रगट हुए और वह पागल सा हो गया। उसने मुझ से जिक्र किया। मैंने मना किया। चूँकि उसका वीर्य क़ायम था और कुछ संस्कार मिला, दृश्य प्रगट हो गये।

यदि शारीरिक स्वास्थ की ख़राबी के कारण रोशनी आदि जैसा कि पुस्तकों में लिखा है, प्रगट नहीं होती तो घबराने की बात नहीं हैं। मैं युवावस्था में अभ्यास के समय इस क़दर रोशनी देखा करता था कि आँख खोलने पर भी रात के समय घर के अन्दर सब वस्तुयें कुछ देर तक दिखाई देती रहती थी। अब बूढ़ा हो गया हूँ। रोशनी है मगर दूसरे प्रकार की। अब सारा मस्तिष्क सफेद रोशनी से भरा दिखाई देता है। दाता दयाल का शब्द है:-

घट में नूर प्रकाशिया, बरस गया चहुं ओर।
जगमग-जगमग हो रहा, बूढ़ा नूर का जोर॥

नूर-नूर सब कोई कहे, नूर न चीन्हें कोय।
गुरु गम परख का ज्ञान जो, नूर कहावे सोय॥

आदि अन्त यह नूर है, छाय रहा भर पूर।
जो न लखे इस नूर , को तिन आँखन में धूर॥

घट में प्रेम प्रगट भया, आँसू निकले नैन।
धो गईं छिन में आँख दोउ, अब लख नूर का सैन॥

राधा स्वामी रूप में, दर्श नूर का पाय।
तिमिर मिटा अज्ञान का, सत गुरु भये सहाय॥

इस बार मैं व्यास गया! महाराज जी से मिला उनसे निवेदन किया कि राधा स्वामी मत ने भ्रम और संशयों से मुक्त कर दिया है। अब सुखी

हूँ और आप के पंथ के गुण गाता हूँ। दाता दयाल ने सत्संग कराने का काम दिया था मगर इसमें कष्ट होता है। उन्होंने कहा, 'गुरु आज्ञा मुकद्दमा' काम करते रहो। मैं इसी कारण से कार्य करता हूँ। यदि तुम्हारे संशय चले जायें, सुखी हो जाओ, निर्द्वन्द हो जाओ तो मैं समझूँगा कि मैंने काम कर दिया।

मेरे लेख को ध्यान-पूर्वक पढ़ो। मैंने इसमें जो निज अनुभव लिखे हैं उनको समझो। इस काल रूपी संसार से, जो वास्तव में हमारे आवागवन या जन्म मरण का कारण (हेतु) है, बचाव का केवल एक मात्र उपाय राधास्वामी नाम का गाना है। इसका अभिप्राय यह है कि अपनी तवज्जह (सुरत) को अपनी ज़ात (निज रूप) से लगाया जाये। दूसरे शब्दों में यों कहिये कि अपने विचार में अपने अन्दर उस अकाल पुरुष का इष्ट धारण करो जो विषय विकार से रहित और मन बुद्धि से परे है।

सम्भव है तुम प्रश्न करो कि मृत्यु के पश्चात् हम कहाँ जायेंगे। इसके उत्तर में मैं यह कहूँगा कि " **जैसी आसा वैसी वासा, जैसी मति वैसी गति।** " अत: मेरी अपनी राय यह है कि मालिक कुल, सर्वाधार या अकाल पुरुष का इष्ट धारण करते हुये जो त्रिगुणातीत है उससे प्रेम करो। सच्चे प्रेमी जनों की संगत करो। मृत्यु के समय स्वयं तुम्हारी तवज्जह या अस्तित्व अपने विचारानुसार वहाँ चला जायेगा जो उसका इष्ट है। फिर तुम्हारे लिये दूसरा जन्म न होगा।

अब तक जो कुछ मैंने लिखा है वह मेरा अनुभव प्राचीन विचारों याप ंथके ि नयमानुसारह ै ।स म्भवह ै त ु म्हाराअ भिप्रायस ।ईंसके सिद्धान्तों के अनुसार अधिक प्रकाश इस विषय पर डलवाने का हो

क्योंकि तुमने पूर्ण – रूपेण इस विषय पर व्याख्या करने के लिये लिखा है।

भगवान सिंह ! जहाँ तक हमारा बाह्य इल्म या ज्ञान है वह यह है कि तुम्हारा जन्म तुम्हारे पिता के वीर्य से हुआ, इस वीर्य के अन्दर तुम एक कीटाणु थे और वही कीटाणु माता के पेट में बढ़ता हुआ बच्चे के रूप में प्रगट हुआ। उस दशा में तुमको न कोई चिन्ता थी न कोई अन्य विचार, न ईश्वर का ध्यान , न उपासना की फिक्र। यदि कोई स्मरण है तो बताओ। स्मरण कैसे हो? वहाँ मन नहीं था। केवल जीवन था। अब इस जीवन की वास्तविकता पर विचार करो कि वह कैसे बना था। वह वीर्य पिता के रक्त से बना था और रक्त उस खाद्य सामग्री पृथ्वी से उत्पन्न हुई थी। उसकी उत्पत्ति में सूर्य व तारागणों के प्रभाव सर्ममिलित थे जो किरणों द्वारा पृथ्वी पर पड़ते रहते थे। उन किरणों में प्रकाश था, गर्मी थी जो ऊपर के लोकों से पृथ्वी पर आई थी। इससे प्रमाणित होता है कि तुम्हारा शारीरिक जीवन उन किरणों का समुदाय है। चूँकि प्रकाश मिश्रित वस्तु है, अत: वास्तव में तुम्हारा अस्तित्व कोई ऐसा है जो प्रकाश या नूर से पृथक् है। प्रकाश मिश्रित होने के कारण परिवर्तन के नियम के आधीन है और जब तुम्हारा नूर (प्रकाश) स्थूल पदार्थ से मिलता है तो विचार या मन उत्पन्न होने लगता है। तुम्हारा मन या विचार सबके सब उस समय तक हैं जब तक तुम्हारा प्रकाश रूपी स्वरूप इस स्थूल पदार्थीय शरीर से सम्बन्ध स्थापित किये हुये हैं। जब यह निकल जायेगा तब विचार संकल्प – विकल्प आदि सबके सब बन्द हो जायेंगे। विचार पहिले भी नहीं थे फिर भी न रहेंगे, क्योंकि सोच विचार, ध्यान, चिन्ता आदि तुम्हारे प्रकाश रूपी स्वरूप का इस स्थूल

शरीर से मिलने का परिणाम है।

यही सब है कि अभ्यास (साधन) की दशा में जब तवज्जह (सुरत) मस्तिष्क के अन्दर प्रकाश रूप में आती है अथवा संतों की भाषा में त्रिकुटी में जाती है विचार बंद हो जाते हैं। उनको यानी (विचारों को) मरने के बाद यों भी बंद हो जाना है। अब बन्द हुये या मरने के बाद बन्द हुये। चूँकि प्रकाश या अग्नि आकाश से उत्पन्न होती है और आकाश का गुण शब्द होता है अत: 'तू' शब्द से भी ऊँचा है। यहाँ 'तू' से अभिप्राय ज़ात या निजस्वरूप से है। यह पंच तत्व जिनके मेल से यह रचना मानी गई है स्थूल भी है , सूक्ष्म भी है और कारण भी है। संतों ने समझाने- बुझाने के लिये स्थूल तत्त्वों के मंडल को माया देश, सूक्ष्म तत्त्वों के मंडल को काल देश या ब्रह्म देश और कारण तत्त्वों वाले को चैतन्य देश कहा है। वास्तव में यह तत्त्वों का ही खेल है। केवल शब्द का फेर है। दु:ख- सुख या जन्म – मरण का भान केवल शरीर की वजह से ही होता है। तुम प्रेम को दिल में स्थान दो। प्रेम भी केवल अकाल पुरुष या राधास्वामी दयाल से हो जो अनामी पुरुष से लेकर नीचे के मंडलों तक सम्पूर्ण रचना का आधार है। वह तेरा अपना आपा या निज स्वरूप है। तुम जितना इसका विचार या सुमिरन करोगे उतना ही तुम्हारा सम्बन्ध या बन्धन इस स्थूल, सूक्ष्म और कारण पदार्थ से कम हो जायगा। शरीर छूटने पर तुम अकाल पुरुष में, निज रूप में, राधास्वामी धाम में जाओगे।

मैं इस विचार धारा पर और भी प्रकाश डाले देता हूँ। तुम्हारे नूर या प्रकाश रूपी शरीर में ठहरने से, जैसा कि मैंने पहिले वर्णन किया है, संकल्प- विकल्प बंद हो जायेंगे। फुरना बंद हो जायेंगी। इस नूर या प्रकाश रूपी शरीर में Radiation सूक्ष्म शक्ति होती है। उसका रुझान

नीचे की ओर या फैलाव की ओर होता है। इसका रुख बदल कर या उलट कर अपने निजरूप की ओर ध्यान होने से (Radiation) या सूक्ष्म शक्ति इकट्ठी हो जाती है और मनुष्य शरीर में आनन्द और महान आनन्द का अनुभव होता है जिसको खुद मस्ती (निजानन्द) की दशा भी कहते हैं। यदि नूर या रोशनी नज़र न भी आये या प्रगट न हो तो भी आनन्द या खुदमस्ती या दसवें द्वार की हालत पैदा हो सकती है। उसकी प्राप्ति के लिये गाढ़े प्रेम की आवश्यकता है। उसके आगे बिना शब्द गुरु के गुज़ारा नहीं है। कोई मनुष्य निज स्वरूप का अनुभव बिना शब्द के नहीं कर सकता। यही कारण है कि संतों के मार्ग में शब्द की महिमा है।

शब्द गुरु को कीजिये, बहुतक गुरु लवार।
अपने-अपने स्वाद को, ठौर-ठौर बट मार॥ (कबीर)

इस शब्द को प्रगट करने या शब्द गुरु से मिलाप के कई ढंग हैं। यदि विषय विकार का जीवन गुजारने के कारण स्वास्थ्य खराब हो गया है और पुस्तकों के वर्णन के अनुसार मनुष्य अधिक शारीरिक बोझ लेकर एकाग्रता प्राप्त नहीं कर सकता या अभ्यास नहीं कर सकता और नूर या प्रकाश उत्पन्न नहीं होता तो उसको चाहिये कि अपने ही विचारानुसार अपने अन्तर में सच्चा बनने की कोशिश करे। तुम केवल उस बात को मानो जिसको तुम्हारा दिल स्वीकार करता हो। दूसरों का न खण्डन करो न किसी से घृणा करो। ज्यों-ज्यों तुम सच्चे बनोगे तुम्हार मन निर्मल होता जायेगा। केवल निर्मलता की देर है कि अन्तर में शब्द स्वंय प्रगट होगा। संतों के मार्ग में प्रेम और सच्चाई पर जोर दिया गया है। तुम पुस्तकों में लिखी बातों पर न जाओ। वह किसी ध्येय और प्रयोजन से लिखी जाती हैं।

मेरे इस लेख से भी शायद तुमको तसल्ली न हो और तुम यह

जानने के अभिलाषी हो कि वास्तव में आवागवन होता है या नहीं। मैं कहूंगा कि हाँ होता है मगर इस आवागमन से कोई दु:ख नहीं होता है। जन्म - मरण प्राकृतिक है। प्रकृति का खेल है। जिस-जिस प्रकार की होगी, वैसे-वैसे शारीरिक मानसिक और आत्मिक ज्ञान या बोध पैदा होते रहेंगे। इस भ्रम में पड़ने से कोई लाभ नहीं मगर मनुष्य की बुद्धि विवश करती है कि वह ऐसे सवाल उठाये। इस विषय में वह लाचार है। तुम कह सकते हो कि फिर उपाय करने से क्या लाभ। इसका उत्तर यह है मनुष्य की तदवीर या उपाय उसकी तकदीर है। गुरु नानकदेव जी ने अपना अनुभव इस प्रकार वर्णन किया है-

करे करावे आप ही आप।
मानुष के कछु नाहीं हाथ॥

तुम शायद यहाँ भी न ठहरो, अत: मैं अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि सूक्ष्म शरीर के अंदर जिस-जिस प्रकार की इच्छायें या वासनायें होती हैं, मरने के पश्चात् वह सूक्ष्म बोध शक्ति प्रकाश (Radiation) की शक्ल में अपनी इच्छाओं के वश Magnetism या आकर्षण के सिद्धान्त के अनुसार वहाँ जायेंगी या खिंचेगी जिससे उसे प्रीति है अथवा जो उसके आकर्षण का केन्द्र है। विषय बहुत गूढ़ और सूक्ष्म है। ज्यों का त्यों लेखबद्ध करना कठिन है।

चूँकि तुम्हारा पुस्तकीय ज्ञान अधिक है अत: यह सम्भव है कि तुम यह प्रश्न करो कि वेदान्ती जो ब्रह्म भाव (ब्रह्मस्मि) को पक्का करते हैं क्या वह इस अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। इसका उत्तर यह है कि सच्चा वेदान्त विचार या संकल्प- विकल्प से ऊँचा है। भक्ति मार्ग वाले विचार द्वारा भक्ति करते हैं और वेदान्ती विचार से ब्रह्म बनते हैं। यहाँ तक दोनों बराबर हैं और दोनों का परिणाम भी एक है। वह है

चुप्पी या खामोशी। चूंकि यह रहनी और अमल का विषय है इसलिये इन बातों पर दलील करना उचित नहीं है और मन की उथल-पुथल बढ़ाना है।

मैंने हर पहलू से सच्चाई के साथ इस विषय को समझाने का प्रयत्न किया है। आवागवन के विषय पर धार्मिक ग्रंथों में जो वर्णन दिये गये हैं वे सब बुद्धि और अनुभवी ढंगों का प्राकट्य हैं वरना जब मनुष्य अनुभव की अवस्था में सच्चा होकर आता है तो यह सदा देता है–

उत ते कोई न आइया, जासे पूंछू जाय।
इत ते सब कोई जात हैं, भार लदाय-लदाय॥

राधास्वामी दयाल ने भी सब कुछ कहते-कहते अन्त में कहा है कि सब चुप हुए हैं मैं भी चुप हुआ। अब रह गया तुम्हारा सवाल सन्त या सतगुरु की दया के सन्बन्ध में, उनकी दया का एक अंग तो तुमने समझ लिया कि वह विभिन्न तरीकों से सार भेज को समझाकर दिल के इत्मीनान की सूरत पैदा कर देते हैं अथवा जिस प्रकृति या जिस प्रकार के हालात और ख्यालात वाला मनुष्य उनके सम्मुख आता है वह उसके उन्हीं विचारों को ताकत देकर उसकी आवश्यकता की पूर्ति कर देते हैं।

सतगुरु मिले अनेक फल, संत मिले फल चार॥

रहा फूँक मारने वा करामात दिखाने का सवाल, सुनो! विचार, इच्छा या संकल्प शक्ति एक प्रबल शक्ति है। मैस्मरेज़िम करने वाला अपनी संकल्प शक्ति से दूसरे व्यक्ति पर नींद की दशा ला जेता है। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य स्वप्नावस्था में, जो कि संकल्प या ख्याल का ही खेल है, किसी स्त्री से प्रेम करे, तो उसका वीर्य क्षीण हो जाता है। मिठाई का नाम लेने या ख्याल दिल में लाने से मुँह में पानी भर आता है। यह

सबूत है कि आपके विचार में बड़ी भारी शक्ति है। लोग विचार या संकल्प को केवल एक मामूली और बेअसर चीज़ समझते हैं। दृढ़ इच्छा या संकल्प शक्ति वाला व्यक्ति यदि चाहे कि मुझ पर मैस्मरेजिम का प्रभाव न पड़े तो नहीं पड़ सकता। अथवा जिस मनुष्य का हृदय शुद्ध है और उसको स्वप्न में भी स्त्री दिखाई दे जाये तो माँ या बहिन के विचार या भाव के कारण उससे प्रभावित नहीं होता। इसलिये संत या गुरु के वचन या उनकी रूहानी धारों या लहरों से वही लोग प्रभावित होते हैं जिनको उनपर विश्वास होता है। बुद्धिवाद के जगत के लोगों को समझबूझ के साथ और भ्रम निवारण या शंका समाधान के बाद एकाग्र चित्त से काम करने की आवश्यकता है। यदि कुदरत या मौज ने मुझको यह शक्ति प्रदान की है तो मैं सच्चे दिल से इच्छुक हूँ कि तू इसी जीवन में सुख शान्ति को प्राप्त करे और सच्ची व दिली भक्ति व ज्ञान से सतगुरु सतपुरुष राधास्वामी दयाल की दया प्राप्त करे। प्रातः काल 5 और 7 बजे के बीच अभ्यास किया करो। मैं भी उसी समय बैठता हूँ। हम दोनों भाई हैं। प्रेम के कारण और टैलीविजन (Television) के सिद्धान्त के अनुसार स्वयं एक लैविल (level) पर आ जायेंगे।

जो गुरु बसें बनारसी, शिष्य समुन्दर तीर।
एक पलक बिछुरे नहीं, जो गुन होय शरीर॥

काहेद ुखप ावेध ाबरावेभ गवान,ब ातम ेरीत ू ि चतस ेम ान।
सच्चा बन कर चित से भाई, किया कर सतगुरु का ध्यान॥
यह सचाई काम आयेगी भाई, और करेगी तेरा कल्याण।
सच्चे पुरुष को दोष न लगे, कपटी जन होवें हैरान॥
वह सतगुरु रक्षक दाता सबका, रहेंगे तुम पर मेहरबान।

बन्धन-मुक्ति, भक्ति के आगे, ठहरे नहीं सुन भगवान॥
यह भक्ति वृथा दाता से मांगे, दे गये थे वह वरदान।
मस्त हूँ अब मस्त हूँ मैं, मस्ती बन गई है मेरी शान॥
काम करूँ अब निष्काम बन मैं, सुबह शाम होता हूँ अन्तर्ध्यान।
तुम भी यह करनी कमाओ भाई, होगा 'भगवान' तुम्हारा कल्यान॥

साधारण रूप से सत्संगियों का गुरुमत में यह ख्याल या विश्वास पाया जाता है कि अन्त समय सतगुरु आता है और सत्संगी को ले जाता है। बात ठीक है मगर लोग सार भेद से अनभिज्ञ हैं। सुनो! सतगुरु के कई रूप हैं।

प्रथम– सार अनुभव के बाद सच्ची भक्ति का बोध मनुष्य के अन्दर पैदा होता है। यदि वह प्राप्त हो जाये तो, चूंकि वह पुरुष विदेह मुक्त होता है, यह गति अंत समय पर सहायता करती है और वह स्वयं मालिक का या ज़ात का रूप होता है।

द्वितीय– शब्द स्वरूप सतगुरु- यह जिसको जीवन में प्राप्त हो जाता है वह अन्त समय में उसको ज़ात में मिलाकर व्यक्तित्व को मिटाकर पूर्णता दिलाता है।

तृतीय– नूर रूप (प्रकाश रूप) सतगुरु-चूंकि मनुष्य ने उस नूर (प्रकाश) रूप में अकाल पुरुष का या ज़ात (स्वरूप) का विश्वास किया हुआ है इसलिये उसके विश्वास, आशा या विचारानुसार वह (नूर) उसको ज़ात या निजस्वरूप में लय (वासिल) कराता है।

चतुर्थ– मानसिक या ख्याली सतगुरु का रूप- यदि विश्वास सच्चा है और उस रूप में उसने ज़ात या मालिक को माना हुआ है तो विचार की शक्ति के सिद्धान्त पर वह रूप भी उसको ऊपर ले जायेगा।

हाँ, जिन लोगों ने गुरु को मनुष्य समझा, वे इस अवस्था को प्राप्त करेंगे। जिनकी वासना अभी संसार में है उनकी अवस्था का तुम स्वयं अनुमान कर लो।

यदि किसी ने मनुष्य से भी सच्चा प्रेम किया है तो वह वहाँ जायेगा जहाँ वह मनुष्य होगा। इसलिये मैं तो यह कहूँगा कि गुरुआई करने वाले अपनी रहनी को बेहतर बनायें तो अज्ञानी और अंध विश्वास जीवों का, जो सार बात को समझने के अयोग्य हैं और श्रद्धा के साथ उनसे प्रेम करते हैं, अकाज न होगा।

भगवान सिंह! सतगुरु एक होता है। वह सार ज्ञान का रूप है। बाहरी पूर्ण गुरु या सच्चे पुरुष की संगत से और अभ्यास से मनुष्य के अपने अन्दर वह प्रगट होता है। शब्द उसका कारण रूप है। प्रकाश (नूर) उसका सूक्ष्म शरीर है और बाहरी सच्चा महात्मा साधू या संत उसका स्थूल शरीर है।

सत्पुरुष की आरसी, संतन की ही देह।
लखा जो चाहे अलख को, उनही में लख लेय॥

मैंने अपनी समझ से आवागवन के विषय पर कोई बात बाकी नहीं छोड़ी। जहाँ तक शब्दों द्वारा समझाया जा सकता है समझा दिया। यदि वास्तविक रूप से संतुष्टि की आवश्यकता है तो वह निज अनुभव से होगी। अनुभव प्राप्ति के लिये सतगुरु (ज़ात, या स्वरूप) को इष्ट बनाकर और पूर्ण गुरु से शिक्षा दीक्षा लेकर करनी (अभ्यास) की आवश्यकता है। बिना करनी या अभ्यास के इस विषय पर पूर्णता प्राप्त करना कठिन है बल्कि यह कहूँगा कि इस भ्रम से छुटकारा कठिन है। अन्त में एक सवाल और उठता है। उस पर प्रकाश डाले देता हूँ। वह यह है कि तुम या कोई अन्य पाठक सवाल करे कि वह संत, महात्मा या

फ़कीर कैसे होते हैं जिनकी संगत या दर्शन से मनुष्य को अलख पुरुष या ज़ात का साक्षात्कार प्राप्त होता है।

इसका उत्तर यह है कि यह कठिन है कि साधारण व्यक्ति उनकी पहचान कर सके। यदि कोई जिज्ञासु किसी हद तक उनकी पहचान करना चाहे तो उसको चाहिये कि कुछ दिनों उनके साथ रहकर उनके प्राइवेट जीवन का अध्ययन करे। सच्चे संत या फ़कीर की बाबत जो कुछ मुझे ज्ञात है वर्णन करता हूँ।

1. उनके दिल में किसी मानव या देह धारी या किसी विचारधारा अथवा वस्तु से घृणा नहीं होती।
2. वे ईश्वर, ब्रह्म आदि के पुजारी नहीं होते। वे केवल ज़ात, हक़ या निजस्वरूप, जो मनुष्य से अलग नहीं है, पर विश्वास रखते हैं। आत्म संयम, आत्म नियंत्रण, आत्माभिमान उनकी विशेषता होती है।
3. न किसी को अपना स्वामी न किसी को सेवक समझते हैं।
4. निर्भयता उनकी शान होती है मगर अदब (शिष्टचार) के पहलू को कभी नहीं छोड़ते।
5. निज स्वार्थ या ग़रज़ से परे रहते हैं। राज़ी बरज़ा (मौज आधीन) पर चलते हैं।
6. सरल स्वभाव होते हैं। अपने स्वार्थ वश किसी से चालाकी का व्यौहार नहीं करते।
7. किसी पंथ, सम्प्रदाय, धर्म या समाज का पक्ष नहीं करते बल्कि सबके आदर मान का ख्याल रखते हैं।

8. अपनी रोजी आप कमाते हैं। किसी का दान या चढ़ावा आदि का सहारा नहीं लेते।
9. उनकी आँखें चमकीली, माथा चौड़ा होता है। उनका सच्चा धर्म इंसानियत (मनुष्यता) का धर्म होता है। सच्चे हमदर्द होते हैं। नुक्ता चीनी करने वाले या पर दोषदर्शी (ऐबीं) नहीं होते। किसी का पर्दाफाश (भंडाफोड़) नहीं करते।
10. जिस विचारधारा का मनुष्य उनके दरबार में जाता है उसी के विचार से सहमत होकर धीरे-धीरे उसकी दृष्टि को ऊँचा कर देते हैं। अनुचित खंडन -मंडन से बचते हैं।

ये लक्षण ऐसे महात्माओं के विषय में हैं जो पूर्ण पुरुष होते हैं। दूसरे महात्माओं के विचारों में अन्तर होता है। कोई हंसगति में होता है, कोई साध, कोई साध, कोई साध गुरु, कोई अवधूत। पूर्ण पुरुष बनने के लिये सिवाय शब्द योग की कमाई के और कोई तरीका नहीं है।

सौभाग्य से यदि किसी सच्चे महात्मा या सन्त या फ़कीर की संगत मनुष्य को मिल जाये और उनके बताये हुये तरीके पर एकाग्रता का अभ्यासी हो जाये तो उसका जीवन अत्यन्त आनन्ददायक, निर्भय, भ्रम रहित, चिन्ता रहित, राम रहित बन जाता है। सच्चे सन्त या महात्मा की शिक्षा केवल नाम है जिसका अर्थ है मानसिक और आत्मिक एकाग्रता। मानसिक एकाग्रता सुमिरन और ध्यान से और आत्मिक एकाग्रता बिना शब्द अभ्यास के कदापि न होगी, न होगी, न होगी। हाँ, मानसिक एकाग्रता के हज़ारों तरीके प्रचलित हैं। जब तक मानसिक व आत्मिक एकाग्रता प्राप्त न होगी मनुष्य में सार ज्ञान या सार अनुभव पैदा न होगा।

आत्मिक एकाग्रता की प्राप्ति और शब्द अभ्यास के लिये मन को निर्मलता की आवश्यकता है। मन की निर्मलता के लिये जहाँ प्रेम की आवश्यकता है वहाँ अपने अन्तर में सच्चे बनने की आवश्यकता है। यह मेरा निजी अनुभव है। मुझे इस प्रेम से जो मेरे अन्तर में था उतनी सफलता नहीं हुई जितनी कि (True to myself) अपने में सच्चा बनने के उसूल से हुई। इसलिये मेरी यह राय है कि तू अपने अन्तर में सच्चा व्यौहार कर, अपने आपको धोखा मत दे, जिस बात का तुमको अनुभव नहीं या विश्वास नहीं, उसे मत मान। केवल उस मार्ग को ग्रहण कर जिसको तेरा अन्तःकरण कहता है। सब की सुनो। करो वह जो दिल कहे मगर दिल को सच्चा रखो। फिर तुम्हारा अपना आपा जो सच्चा गुरु है स्वयं हकीकत, शान्ति और निर्भयता की और ले जायगा। आप आपको आप पहिचानो। कहा और का नेक न मानो॥ (रा.स्वा. दयाल)

तुम या कोई और पाठक करे कि जब असल बात यह है कि जो कुछ है अपने अन्दर है अथवा अपना आपा या ज़ात है तो बाहरी गुरु की क्या आवश्यकता है। इसका उत्तर यह है–

बाहरी मुरशिद कामिल की दया से यह राज़ मिला।
जिसको ढूँढ़ता था दर असल वह आपा था॥
राधा स्वामी, नानक, कबीर और पलटू।
सबने यही कहा सबका यही था मुद्दया॥
पर बात समझ में न आई भगवान-बहुत भटका।
भटक-भटक कर उक़दा यह है मेरा खुला॥

1. छुटकारा 2. बुलावा 3. देखकर 4. सार

इस उक़दा को खुलाने को दाता ने था काम दिया।
शिष्य गुरु के राज़ से अब मैं वाकिफ़ हुआ॥
इसलिये बन्दी छोड़ है मेरे लिये सन्तों का मारग।
बलिहारी है सन्तों की जिनकी दया से भरम गया॥
वहम मुक्ति बन्धन के गये-टूटे भरम किले।
आज़ाद हुआ आज़ाद हुआ, आज़ाद हुआ॥
यह दुआ है मेरी फैली सन्तों की मारग जग में।
आज़ाद हो दुनिया-छूटे गुरुओं से-उतरे गुलामी का जुआ॥
तुम तो एक फ़कत आवागवन से चाहते हो मुख़लिसी[1]।
मैंने समझा है संतों के मारग को आज़ादी ये सला[2]॥
मुल्की हो- सोशल जिस्मानी या रूहानी।
सन्तों की दया से छुटाकारा अहसासात से हुआ॥
आज़ादी की तमन्ना में कैसे सब भरमों में फँसे।
किससे कहूँ राज़-नहीं फ़क़ीर की कोई सुनता॥
मौज निहार[3] खामोश हो चुप बैठा हूँ कोने पर।
वक्त आने पर दुनिया देख लेगी सन्तों का मफ़हूम[4] था क्या॥
इक आयेगा मर्दे फ़क़ीर जहाँ में ऐ भाई।
डंका बजायेगा फ़क़ीरों का देता हूँ बता॥
कबीर नानक और पलटू की तालीम है मौजूद।
काम करती है कहीं-कहीं और हर जा॥

यह सच है कि सब कुछ अपना आपा है लेकिन पूर्ण गुरु के सत्संग के बिना यह भेद या ज्ञान किससे मिलेगा। इसलिये जो आदमी थोडा बहुत अनुभव प्राप्त करके बाहरी सत्संग या सन्तों की तालीम के

सिलसिले का खंडन करता है वह कृतघ्न है मन मत है।

कामी तरे क्रोधी तरे, लोभी तरे अनन्त।
इक कृतघ्नी ना तरे, कह गये कबीर सन्त॥

अपना विचार

अपनी हस्ती का अहसास जब तलक है मुझे।
जानता हूँ कि कोई मेरा आधार है॥

खिंचता रहता हूँ नित इसकी तरफ मैं।
क्या है वह क्या नहीं बुद्धि इज़हार से लाचार है॥

लोहे को चुम्बक खींचता है लोहा नहीं जानता।
मेरी भी वही दशा है जिसका मुझे इकरार है॥

ऐ फ़कीर रूपी लोहे के आधार चुम्बक खींचे चल।
इस खींचने में भी मज़ा है और लुत्फे बहार है॥

बचपन से तेरी तलाश थी क्यों कुदरती था खेल।
जानता हूँ मगर वह इल्म नाक़ाबिले इज़हार है॥

जज़्बये कशिश बढ़ा तो तू बशकल मुरशिद आया।
खिंचा उसकी तरफ़ यह खिंचावट दिल का प्यार है॥

लोग कहते हैं कि यह दिल की अपनी माबूद है। उपास्यदेव खोजा उसको तो समझ में आया कि मेरा कोई आधार है।

ऐ मेरे आधार मेरी हस्ती के सहारे बात सुन।
जो कुछ कि मैं करता हूँ नहीं ऐसा विचार है॥

तुम से निकला तुमने कराया जो मैंने किया।
अब भी करता हूँ वही जो रज़ाये यार है॥

हालते तसकीन या ठहराव आये बार-बार।
ठहरा और फिर बढ़ा क्या अजब यह रफ़तार है॥

इसलिये हस्ती के साथ है यह मजबूरी।
कि खिंचता रहता हूँ तेरी तरफ यह अब कार है॥

ऐ मेरे आधार, मालिक, सतगुरु, दातादयाल, इस रचना के सिलसिले में एक व्यक्ति भगवानसिंह ने आवागवन के विषय में सवाल किया। इस फ़कीर रूपी लोहे ने जो अनुभव किया वह लिख दिया।

न यह दावा है कि जो लिखा वह सत्य है।
और न ही खौफ है कि वह असत्य है॥

मंजिलों से गुज़रा ऐ चुम्बक रूपी दाता।
तजुरबा अपनी जिन्दगी का यह फ़क़त है॥

अगर कुछ और है तो इसका भी अनुभव हो जाये।
गर कुछ और नहीं तो फ़कीर प्रेम में मस्त है॥

जब तलक हैं अहसासाते जिस्मानी दिली रूहानी।
खिंचता रहता हूँ तेरी तरफ़ यह हालते हस्त है॥

जब तीनों नहीं तो फिर क्या है ऐ ज़ात मेरी।
न तू है न मैं यह अज़ल की हालत है॥

चर्तुथ प्रसंग

अजीज़ देवी चरन को मैंने अपने ख्यालात के प्रकाशित करने का अधिकार हिन्दी और अंग्रेजी में किसी मुआवजा के बिना इस गरज़ से

कि इस काम से शायद उसके ज़हन में हकीकत (सार तत्त्व) आ जाये दिया हुआ है। आज उसका खत आया कि 'आवागवन' नामी उर्दू की पुस्तक का अनुवाद हिन्दी में करके प्रेम को दे दिया है। वह चाहते हैं कि यदि इसमें कुछ और बढ़ाना हो तो बड़ा सकता हूँ।

इसलिये

आवागवन के पाठकों या आवागवन के मानने या न मानने वालों के लिये अपना निज अनुभव (रा.स्वा. दयाल की) वाणी के आधार पर वर्णन करना चाहता हूँ। वाणी का आधार इस वास्ते लेता हूँ कि लोग प्राचीन ग्रंथों को पसंद करते हैं, हवाले चाहते हैं। इसलिये सत्पुरुष राधास्वामी दयाल की वाणी को पढ़ो।

चार खान चौपड़ जग रची।
अन्ड जेर सेदज उदभिजी॥ 1

माया ब्रह्म पुरुष पिरकिरती।
मन इच्छा खेलें शिव शक्ती॥ 2

सुर्त नर्द ता मैं बहु पची।
धूम खेल की अतिकर मची॥ 3

तीन गुनन का पासा लीन्ह।
रजगुन तमगुन सतगुन चीन्ह॥ 4

कर्म हाथ से पासे डारे।
भोग अंक ता में विस्तारे॥ 5

झूठी बाजी जानी सच्ची।

कोई पक्की कोई मारे कच्ची॥ 6

नर्द सुरत चौरासी घर में।
भरमत फिरे दुख और सुख में॥ 7

हारे ब्रह्म और जीती माया।
जीव नर्द बहु विधि दुख पाया॥ 8

कभी-कभी ब्रह्म जीत जो होई।
निज घर अपना पाये न कोई॥ 9

माया ब्रह्म खिलाड़ी दोई।
खेलें इन नरदन से सोई॥ 10

भरमे नर्द पिटे और कुटे।
दुःख उनका कोई नाहिं सुने॥ 11

सभी नर्द पछतावें दम दम।
कैसे छूटें इनमें दम दम॥ 12

करें फ़र्याद दाद नहिं पावें।
रोवें झीखें और चिल्लावें॥ 13

बार बार भरमें चौरासी।
कोई न काटे उनकी फाँसी॥ 14

श्रुति स्मृति और वेद कुरान।
सब ही मारें इनकी जान॥ 15

माया काल बिछाया जाल।
अपने स्वारथ करें बेहाल॥ 16

कोई गोट न जावे घर को।
यहाँ ही खेल खिलावें सब को॥ 17

सत्त पुरुष देखा यह हाल।
काल हुआ जीवन का काल॥ 18

अपने स्वाद जीव भरमावे।
पता हमारा काहु न बतावे॥ 19

पुरुष दयाल दया उमगाई।
संत रूप धर जग में आई॥ 20

नर्दन को बहु विधि समझाया।
काल निर्दई तुमको खाया॥ 21

अब मैं कहूँ करो तुम सोई।
जाल जाल कर न्यारे होई॥ 22

सतगुरु संग बाँध जुग चलो।
चोट न खाव काल बल दलो॥ 23

यह घर काल बसाया आन।
तुमको लाया हमसे माँग॥ 24

यह तो घर है काल का,
घर अपना मत जान।

निश्चय करके मानियों,
जो अब करूँ बखान॥ 25

निज घर तुम्हारा हमरे देश।
अब मैं कहूँ देश सन्देश॥ 26

सत्तनाम सत पुरुष कहाई।
चौथा लोक सन्त कहें भाई॥ 27

ताके परे अलखपुर बसा।
सन्त सुरत बिन कोई न धँसा॥ 28

अगम लोक रचना तिस परे।
बिन वहां पहुंचे काज न सरे॥ 29

ताके आगे निज घर जान।
राधा स्वामी धाम पिछान॥ 30

इन लोकन की शोभा भारी।
देखे सो जिन जुक्ति सम्हारी॥ 31

अब जुक्ती का भेद सुनाऊँ।
सुरत शब्द की राह लखाऊँ॥ 32

मन इन्द्री उलटो घट माहीं।
सुरत निरत दोऊ नैन जमाई॥ 33

सहस कँवल चढ़ त्रिकुटी आओ।
सुन्न के परे महा सुन्न पाओ॥ 34

भँवर गुफा सतलोक निहारो।
अलख अगम के पार सिधारो॥ 35

राधा स्वामी कहा बनाय।
चौपड़ खेली अद्भुत आय॥ 36

पौ पर बाजी अटकी आय।
गुरु बिन पौ का दावन पाय॥ 37

सन्त सतगुरु के जो जन पाय।
चौपड़ से बाहर हो जाय॥ 38

निज घर अपने जाय समाय।
राधास्वामी दर्शन पाय॥ 39

इस शब्द में आवागवन यानी चौरासी में जीवों के खिलाने और फंसाने का जिम्मेदार (1) ब्रह्म और माया करार दिया है और कहा है कि (2) ब्रह्म और माया खिलाड़ी हैं जो जीव रूपी गोटों को इस संसार रूपी चौपट (चौपड़ के खेल) में खिलाते रहते हैं। (3) हमेशा माया की जीत होती है और ब्रह्म की जीत कभी-कभी होती है। यदि हो भी जाये और मनुष्य ब्रह्म में लय होकर आवागमन से बच जाये अर्थात् जीव रूपी गोट पासे के बीच में जो भाग होता है इसमें पककर ठहर जाती है, फिर भी जब ब्रह्म चाहे पकी हुई गोट को कच्ची करके खेल में ले आता है। (4) आगे कहा है कि इस खेल से कोई भी आवागवन से नहीं बच सकता है। इस दशा को देखकर सत्पुरुष को दया आई और सन्त रूप में प्रकट होकर जीवों को इस चौरासी से बचने की तरकीब बताई। वह तरकीब यह है-

सत्गुरु संग बाँध जग चलो।
चोट न खाओ काल बल दलो।

(5) इससे बचने की तरकीब सुरत शब्द योग है।

इसकी श्रेणियां- (सीढ़ियाँ) सहस्रदल कँवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, भंवर गुफा, सतलोक, अलख, अगम।

(6) जब तक कोई व्यक्ति अगम देश में नहीं जाता, उसका काम नहीं बनता अर्थात् 84 नहीं छूटता।

(7) और जब तक कोई सन्त सतगुरु को नहीं मिलता, पौ पूरा नहीं पड़ता है।

ऐ देवी चरन या अन्य पाठकों! मेरा सारा जीवन इस धुन में गुज़रा है। जो अनुभव किया वह कहता हूँ। मेरा यह दावा नहीं कि जो मेरा अनुभव है ठीक है या नहीं भाव स्वामी जी का या सन्तों का था मगर मुझे अपने अनुभव से विश्वास है और वह विश्वास अक्ली नहीं है रहनी से व अमल (अभ्यास) से हुआ है कि आवागवन असली और सच्चे सद्गुरु के बिना नहीं मिल सकता।

अब सुनो! (1) ब्रह्म और माया क्या हैं? हज़ारों महान आत्माओं ने ग्रंथ के ग्रंथ लिखकर भर दिये। अब अपने जीवन के अनुभव से अपने आपको जानने पहिचानने से जो समझ में आया वह कहता हूँ।

चार खान- चार प्रकार के जीव जन्तु हैं। अंडज, जेरज, स्वेदज, उद्भिज। यह कैसे उत्पन्न हुये? कौन उत्पन्न करता है? सूर्य व तारागणों की गर्मी (ताप) प्रकाश और नूर जब स्थूल प्रकृति में प्रवेश करता है तो जीव जन्तु आदि उत्पन्न होते हैं और उत्पत्ति के सिलसिले से रचना होती रहती है।

यह सूर्य अपने मण्डल (Solar system) को पैदा करता है और स्वयं ही अपनी किरणों द्वारा इनमें प्रवेश करता है। शास्त्रों के पढ़ने से इसकी पुष्टि हो जायगी। सूर्य से चन्द्रमा बना उनसे बुद्ध, फिर बृहस्पति, फिर शुक्र आदि। मगर यह सूर्य स्वयं किसी अन्य सूर्य से बना है और प्रकाश लेता है। वर्तमान विज्ञान वेत्ताओं ने कुछ वर्ष हुये इससे परे के सूर्य की फोटो आदि भी ली थी। संतों के यहाँ अनेक सूर्य हैं

जिनका मुझे अनुभव है और मैं सत मानता हूँ और तुमको यकीन करा सकता हूँ। कुल ब्रह्माण्ड, लोकलोकान्तर सबके सब, जिस प्रकाश ताप और नूर से उत्पन्न हुये हैं, वह ब्रह्म है। एक दशा में चूँकि ताप, प्रकाश व नूर सर्वव्यापक है इसलिये यह संसार सारा ब्रह्म मय है। ब्रह्म क्या है? स्वयं ताप प्रकाश और नूर है। साईंस साबित करती है कि हमारा पृथ्वी लोक किसी समय सूर्य का एक भाग था। ठंडा होने पर पृथ्वी की शक्ल में प्रगट हुआ है। वही सूर्य अपने ही हिस्से में प्रवेश करके इस पृथ्वी पर रचना करता है अर्थात् यह ताप प्रकाश और नूर स्वयं विभिन्न रूप बन कर स्वयं ही उनमें खेलता है। इसलिये वर्तमान साईंस के सिद्धान्त के अनुसार साबित हुआ कि हर प्रकार का जीवन चाहे वह इस लोक का है अथवा ऊपर के लोकों का सब ब्रह्म (नूर, प्रकाश और ताप) के कारण से हैं और यही खिलाड़ी है जो गोट रूपी जीवों को बनाकर खेलता है। विषय स्पष्ट हो गया। प्रत्येक जीवन की उत्पत्ति ताप और प्रकाश से है।

माया– नूर, प्रकाश और ताप का स्थूल माद्दे के जड़ प्रकृति या सूक्ष्म प्रकृति में प्रवेश करने से शरीर या रूप बनते हैं और प्रत्येक रूप के अन्दर मानसिक माया कहलाते हैं।

गो गोचर जहाँ तक मन जाई।
वहाँ तक माया मानो भाई।

तात्पर्य कि हर एक रूप में हर समय ब्रह्म के साथ माया रहती है। इसलिये ब्रह्म और माया अर्थात् ताप प्रकाश और नूर और उनका प्रकृति के सम्मेलन से जो शारीरिक और मानसिक भान हर रूप में पैदा होते हैं, उनमें असल तत्त्व, जो इस ताप प्रकाश और नूर का आधार है और जिससे यह उत्पन्न होते हैं, दु:ख –सुख, जन्म – मरण व अन्य प्रकार के

अहसासों या बोध व भान में फंस कर खेलता है और इस खेल का नाम आवागवन है।

(2) इसलिये यह ब्रह्म और माया दोनों हमारे दु:ख- सुख, आनन्द निर्आनन्द के जिम्मेदार हैं। प्रत्येक जीव के अहसासों को तीन भागों में विभाजित करके तमोगुण, रजेगुण और सतोगुण के नाम रखे हुये हैं। इनकी विशेष व्याख्या की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

(3) हमारे सब प्रकार के खेलों में कायक और मानसिक भान हर समय रहते हैं इसलिये हमेशा माया की जीत होती है अर्थात् प्रत्येक अधिकारी हमेशा भाव व विचारों में चक्कर लगाता रहता है। ब्रह्म की जीत कभी–कभी होती है। वह ब्रह्म की जीत क्या है? वह यह है- मानव शरीर का जो तत्व (सुरत) है जब वह अपने सब प्रकार के भान व भावों को छोड़कर नूर (प्रकाश) रूप हो जाता है, या ब्रह्म रूप हो जाता है वह ब्रह्म की हैसियत है। इस ब्रह्म (प्रकाश रूप) में जो रहता है वह सर्व सिद्धि वाला होता है। चूंकि नूर (प्रकाश) का काम फैलना व बढ़ना है इसलिये जब किसी मनुष्य की आत्मा नूर रूप होकर व्यापक नूर (प्रकाश) में समा जाती है तो उस बड़े नूर का भाग जब भी फैलेगा वह नूर फिर चक्कर में आकर और रचना करेगा। जिस तरह मेरा अनुभव कहता है कि अभ्यास में मैं स्वयं नूर (प्रकाश) रूप होकर भी फिर संसार में आता हूं। यह छोटी जिन्दगी है वह बड़ी है। जो पिंडे सो ब्रह्माण्डे।

देवीचरन तुमने लिखा मैं तुमको भूल गया हूँ। याद करना,

सम्बन्ध पैदा करना यह माया का काम है। मुझ से अब उम्मीद न करो कि मैं आप लोगों को याद किया करूंगा। आप असली प्रकाशअ ौरश ाब्दस ेज ोत ुम्हारेअ न्तरम ें ह ै ि जसमेंअ सली देवीचरन हैं, लौ लगाओ और निज अनुभव पैदा करो। मेरे थोड़े काम बाकी हैं। कर्म कर रहा हूँ। फिर क्या होगा कौन जाने।

(4) जो व्यक्ति केवल अपने आपको इस नूर (प्रकाश) में एकत्रित करके अपने आर्थिक और मानसिक भाव को त्याग सकता है वही ब्रह्म देश का वासी है। ख्याली तौर से ब्रह्म बनना असली ब्रह्म होना नहीं है। वह माया का चक्र है।

नूर प्रकाश और ताप ब्रह्म है मगर उसमें भी दर्ज़े हैं। इस नूर (प्रकाश) की विभिन्न दशायें हैं। जिस प्रकार सूर्य के स्वत: प्रकाश से कई रंग निकलते हैं इसी तरह इस नूर (प्रकाश) के कई रंग हैं और वह विभिन्न रंगों में अपने भिन्न-भिन्न रंगों के नूर (प्रकाश) का मंडल बनता है। उन मंडलों और वहाँ की रचना का नाम संतों ने सहस्रदल कँवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न आदि रखा हुआ है। इसलिये जब तक कोई व्यक्ति प्रकाश (नूर) के मण्डलों से ऊपर जाएगा वह पूर्ण रूपेण आवागवन से नहीं बच सकता क्योंकि नूर (प्रकाश) का गुण फलना है।

(5) जो रूह या तत्त्व जो इस प्रकाश और नूर का आधार है, अपने खेल से दुखी होता है, तो आवश्यक और पूर्ति (Demand and Supply) के कानून के आधीन उसको इस खेल से छुटकारा दिलाने वाला भी मिल जाती है। इसकी कशिश या जिज्ञासा स्वयं सामान पैदा करती है। इस आवागवन से छुटकारा दिलाने वाला

संत सतगुरु कहलाता है।

वह कैसे छुटकारा दिलाता है? वह सत्संग कराकर राज़ (सार तत्त्व) बताकर कहता है कि यह देश काल और माया का है। अर्थात् नूर व प्रकाश और उसकी वजह से उसकी माया यानी कायिक और मानसिक भान पैदा होते रहते है, जिसके कारण सूरत दुख सुख भोगती है। वह इससे बचने के लिये नाम दान- (सुरत-शब्द योग) का तरीका बताता है। इस साधन और सत्संग से मनुष्य को ज्ञान हो जाता है। फिर वह इस ब्रह्म या माया के प्रभावों की परवाह नहीं करता। साधन यह है कि पहिले पीले रंग के ब्रह्म यानी नूर (प्रकाश) में आओ। फिर लाल रंग के प्रकाश में आओ, फिर चाँदनी के रंग के प्रकाश में, फिर नीले रंग के प्रकाश में, फिर सफेद रंग के प्रकाश में आकर वहाँ आकाश तत्त्व के गुण (शब्द) को सुनते हुए अपने निज स्वरूप, जो तत्त्व स्वरूप हैं, जहाँ न ब्रह्म है न माया अर्थात् जहाँ प्रकाश है न छाया, न रंग है न रूप है, सबका आदि सब का अन्त है, उसका अनुभव हो जायेगा।

जब तक यह अंतरीय अनुभव नहीं होता यह प्रकाश ताप व नूर और उसके सब प्रकार के भान से इस रूह (सुरत) को जो इस परम तत्त्व (ज़ात) की अंश है इस खेल के प्रभावों से बचाव नहीं मिल सकता। इस अनुभव का नाम अगम देश है यह सोचने समझने या बातें बनाने का विषय नहीं बल्कि अमली जीवन बीताने का है।

इतना ऊँचा जो कोई चढ़े। रूप रंग रेख से परे॥

शास्त्रों में भी 3 मार्ग हैं जिनमें से होकर प्राणी मृत्यु के पश्चात् जाता है। शायद (1) देवयान पंथ (2) पितृयान पंथ (3) अँधेरे का मार्ग है। ठीक नाम याद नहीं।

मैंने जो समझा वह कहता हूँ। देवयान देवताओं का मार्ग। देवता

इस प्रकृति की दिव्य शक्तियाँ हैं। इनकी शक्लें या रूप नहीं है मगर प्रकाश मान हैं इसलिये मेरी समझ में देवयान पंथ प्रकाश का मार्ग है। जो प्राणी मरते समय किसी भी नूरारी रूप का ध्यान करता है वह इस प्रकाश (नूर) में जिसको मैंने ब्रह्म समझा है समा जाता है। मगर जब वह प्रकाश समय पर फैलता है तो जिस ओर को वह फैलेगा इस प्राणी का सूक्ष्म रूप जो नूर रूप हुआ है वह भी इसी ओर को जायेगा। इसलिये देवयान पंथ वाले भी कल्प -कल्पान्तर के बाद आवागवन के चक्र में आ जाते हैं।

दूसरा पितृयान पंथ है। पितृ मार्ग का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। मैं पितृ मार्ग को वासना, भाव, विचार, स्वभाव, गुण और कर्म के भान को लेता हूँ, क्योंकि हमारी देह और में हमारे बड़े बड़ों के स्वभाव गुण और कर्म का संस्कार प्रवेश किया हुआ है। जो प्राणी अपने मानसिक और शारीरिक गुण और स्वभाव में आसक्त हुआ प्राण त्यागता है वह इस माया देश, जो कि स्वभाव, गुण और कर्म का संगठित रूप है, में जाकर अपने गुण कर्म और स्वभाव के संस्कारों के अनुसार जन्म लेता है। चाहे वह जन्म इस लोक में हो या ऊपर के लोक या नक्षत्रों में हो।

तीसरा मार्ग अंधेरे का है, जो प्राणी किसी इच्छा के बिना मूढ़ अवस्थाम ें हताह ुआअ र्थात् ि ववेकब ुद्धिन र खताह ुआअ थवा बिल्कुल ही मूढ़ सांसारिक भोगविलास या खाने पहिनने के सिवा और कुछ नहीं जानता, वह भिन्न प्रकार की योनियों में आता है। मैं नहीं कहता कि आता है मगर उसको सिद्धान्त के अनुसार आना चाहिये। यह मेरा अनुभव है। शास्त्र उसको सिद्ध करते हैं। मगर संतों का मार्ग ज्ञान योग है। वह ज्ञान इल्मी ज्ञान नहीं बल्कि अनुभव है कि मनुष्य क्या है। मनुष्य का स्वरूप न तो प्रकाश है न भाव, विचार, न शारीरिक स्वाद है

बल्कि वह इन सबसे न्यारा है जो इसमें फंस कर दुख सुख भोगता है। इस मनुष्य की ज़ात (स्वरूप) सर्वाधार परम तत्त्व अकाल और अनाम है इसलिये पूर्ण संतों या सत्पुरुषों ने इस संसार में प्रगट होकर सच्ची स्वाधीनताय ास च्चाम ुक्तिके ि जज्ञासुओंक ोस ुरतश ाब्दय ोगक ी हिदायत की कि वह सार शब्द सतनाम को पकड़ कर अपने रूप का ज्ञान प्राप्त करके हमेशा अपने निज धाम में वास करें।

निज धाम या राधास्वामी क्या है?

एक हालते-बेहालती (State of state-lessness) है जहाँ नूर व प्रकाश (ब्रह्म) और इससे उत्पन्न होने वाली शारीरिक और मानसिक भान नहीं होते हैं। अस्तित्व की आदि और अन्त की अवस्था का नाम निज धाम है। अतः आवागमन से बचने के लिए किसी पूर्ण पुरुष का सत्संग और प्रकाश और शब्द के मार्ग का साधन लाज़िमी है। इस सत्संग और साधन से अनुभव तथा ज्ञान हो जायगा। अपने रूप को समझकर जब तक प्रारब्ध है अर्थात् जैसे नूर और प्रकाश सम देही में है वैसे कर्म करने के बाद मनुष्य अपने..........को छोड़कर ज़ात ...

फिर न 'मैं' न 'तू' न 'ब्रह्म न 'माया' चिराग़ गुल पगड़ी गायब। जिन्दगी क्या है- लब खुले और बन्द हुये। मगर जब तक जीवन है व्यक्तित्व प्रकाश और प्रकाश के मंडल में खेलता है और यह खेलना ही असली भक्ति है। जिसका वर्णन इस शब्द में है-

गुरु ने दीन्हा भेद अगम का।
सुरत चली तजि देश भरम का॥

नोट – सनातन धर्म में दो मार्ग हैं- (1) प्रवृति (2) निवृति।

प्रवृति मार्ग मेरी समझ में ताप और प्रकाश व तेज (ब्रह्म) से काम लेना है। यह मानसिक और शारीरिक जीवन के लिये अत्यन्त ज़रूरी है, क़ुदरती है। इसलिये गायत्री और प्राणायाम मंत्र हमारे ऋषियों ने